अध्याय–2

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन

19वीं शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात हुआ जिसका प्रारंभ भारत में यूरोपीय शक्तियों के प्रवेश के साथ हुआ। विभिन्न यूरोपीय शक्तियों में प्रचुर संसाधनों से परिपूर्ण भारत देश के साथ व्यापार करने की होड़ शुरू हो गईं। व्यापार करने आई कम्पनियाँ भारत में साम्राज्य विस्तार की प्रतिस्पर्धा में शामिल हो गई। इसमें इग्लैंण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी अग्रणी रही। सन 1757 ई. की प्लासी की लड़ाई, अक्टूबर, 1764 में बक्सर के युद्ध तथा सन 1765 ई. की इलाहाबाद की संधि से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। कम्पनी के लगातार होने वाले विस्तार ने भारतीय राज्यों व रियासतों को गहरा आघात पहुँचाया।

लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि प्रथा के कारण ही भारतीय राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन होते चले गये। वॉरेन हेस्टिंग्स एवं लॉर्ड कार्नवालिस के समय हुए प्रशासनिक व न्यायिक परिवर्तनों ने भारत में कम्पनी के साम्राज्य को मजबूती प्रदान की। कम्पनी के अधिकारियों ने प्रशासन और न्याय के साथ–साथ आर्थिक मामलों को भी इस प्रकार नियंत्रित किया कि कम्पनी को लगातार मुनाफा हो। इस प्रकार राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक ढाँचे को छिन्न–भिन्न कर कम्पनी ने अपने फायदे के लिये विभिन्न परिवर्तनों की शुरूआत की।

विभिन्न भू–राजस्व नीतियों को लागू करने से कम्पनी को तो नियमित राजस्व की प्राप्ति होती रही, लेकिन इन राजस्व नीतियों के दुष्परिणामों के कारण भारतीय ग्राम्य अर्थव्यवस्था का ढाँचा चरमरा गया। इस प्रकार राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक एवं आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन के साथ–साथ कम्पनी प्रशासन ने भारत के सामाजिक और धार्मिक मामलों में भी हस्तक्षेप की नीति अपनाई। कम्पनी शासन ने विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से भारतीय समाज की विभिन्न कुरीतियों का निषेध करना चाहा, लेकिन भारतीय जनमानस जो पहले ही विभिन्न परिवर्तनों से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया था, वह इन सामाजिक व धार्मिक मामलों में अंग्रेजी प्रशासन के हस्तक्षेप से और असंतुष्ट हो गया। लॉर्ड डलहौजी द्वारा गोद निषेध की नीति के तहत राज्य हड़पे जाने के कारण भारतीय असंतोष और गहरा हो गया। इन सारे परिवर्तनों के साथ–साथ अंग्रेजों की प्रजातीय विभेद की नीति ने भारत में अंग्रेजों और भारतीय समाज के मध्य खाई को और गहरा कर दिया।

भारत में अंग्रेजी शासन का चरित्र विदेशी ही रहा था और यही कारण था कि भारत में प्रथम बार एक विदेशी शक्ति को भारत से बाहर निकालने के लिए एक संगठित जन आंदोलन खड़ा हुआ। भारत पर अंग्रेजों से पूर्व कई विदेशी आक्रमण हुए चाहे वे यूनानी, शक, मंगोल, कुषाण, तुर्क मुगल या अफगानी रहे हो, परन्तु इनमें से किसी भी विदेशी शक्ति ने भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक ढाँचे को इतनी चोट नहीं पहुँचाई जितनी अंग्रेजी राज ने पहुँचाई। इसी के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में विभिन्न सैनिक विद्रोह

हुए तथा इस असंतोष की परिणति का सबसे बड़ा विस्फोट 1857 की क्रान्ति के रूप में सामने आया। इस क्रान्ति के पश्चात् कम्पनी का शासन समाप्त हुआ और वाइसराय ब्रिटिश ताज के प्रतिनिधि के रूप में भारत में ब्रिटिश शासन के प्रमुख बन गये।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लॉर्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ जैसे शस्त्र अधिनियम, वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट तथा दिल्ली दरबार के आयोजन के कारण भारतीय असंतोष लगातार बढ़ता रहा। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के दुष्परिणामों के कारण भारत में लगातार अकाल पड़ने लगे और लोगों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक सुसंगठित विरोध की भावना जन्म लेने लगी। इसी के फलस्वरूप 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसने एक संगठित विरोध का सूत्रपात किया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन आंदोलनों में से एक था। यह आंदोलन भारतीय जनता के एक विशाल अंग को राजनीतिक गतिविधियों में सम्मिलित और सक्रिय करने तथा उन्हें राजनीतिक शिक्षा देने में सफल हुआ।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के कई चरण थे। जैसे–जैसे यह एक चरण से दूसरे चरण की तरफ बढ़ा, इसका सामाजिक आधार भी अधिक व्यापक होने लगा, इसके लक्ष्य अधिकाधिक साहसिक और अधिक स्पष्टता से परिभाषित हुए तथा यह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुआ। भारत और सारे विश्व में विभिन्न शक्तियों के विकास के फलस्वरूप भारतीयों ने अधिकाधिक तादाद में राष्ट्रीय चेतना और दृष्टि अपनाई। राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, हर क्षेत्र में यह राष्ट्रीय जागरण परिलक्षित हुआ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में व्यवस्थित रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत हुई। इसके उद्भव एवं विकास के लिए उत्तरदायी कारण निम्न थे :–

1. भारत का राजनीतिक एकीकरण– ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण देश को राजनीतिक एकता प्राप्त हुई तथा लोगों ने एक राष्ट्र के संदर्भ में सोचना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व दक्षिण के लोग प्रायः थोड़ी अवधि को छोड़कर देश के शेष भाग से अलग थे। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण देश को एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत ला दिया जिससे एक ऐसी राजनीतिक एकता उत्पन्न हुई जो प्राचीन और मध्य काल से भिन्न थी। अतः भारतीयों में अखण्ड और स्वतंत्र भारत राष्ट्र का विचार इस राजनीतिक एकीकरण का परिणाम था।

2. पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव– पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय चेतना को दो प्रकार से शक्ति प्रदान की। एक तो यह कि अंग्रेजी भाषा पूर्व और पश्चिम की सम्पर्क भाषा बन गई। भारत के शिक्षित नवयुवक यूरोप जाने लगे। वे मिल, मिल्टन और रूसो आदि के जनतंत्रवादी, स्वतंत्रता प्रेमी व राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित हुए तथा भारत में भी समानता व स्वतंत्रता पर आधारित शासन व्यवस्था की स्थापना के इच्छुक हो गये। दूसरा यह कि अंग्रेजी के रूप में हमें एक सम्पर्क भाषा प्राप्त हुई जिससे भारत के विविध क्षेत्रों के निवासियों का पारस्परिक विचार–विमर्श के माध्यम से राष्ट्रवाद को एकीकृत व मजबूत बनाने का अवसर प्राप्त हुआ।

3. प्रेस की भूमिका– भारतीय राष्ट्रवाद के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक रूप के विकास में प्रेस का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। प्रेस द्वारा निष्पादित प्रचार व राजनीतिक शिक्षा की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आंदोलन का राजनीतिक रूप उजागर हुआ। इसके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार व शासन की कार्यवाही की प्रतिदिन आलोचना कर सके तथा लोगों को राजनीतिक समस्याओं की समझ और शिक्षा दे सके। प्रेस की मदद से ही वे लोगों के बीच स्वतंत्र लोकतान्त्रिक समस्याओं, प्रतिनिधि सरकार, डोमिनियन स्टेटस की विषय वस्तु, स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार कर सके।

भारत में सबसे पहला समाचार पत्र ''बंगाल गजट'' प्रकाशित हुआ जो साप्ताहिक था। राजा राममोहनराय ने राष्ट्रीय प्रेस की नींव रखी। उनके द्वारा प्रकाशित बंगला पत्र ''संवाद कौमुदी'' तथा फारसी पत्र ''मिरात उल अखबार'' ने देश में राजनीतिक जागरण का कार्य किया।

4. राष्ट्रीय साहित्य का विकास– सन 1878 तक भारत में नवजागरण के चिह्न उनकी विभिन्न भाषाओं में देखे गये। इनमें राष्ट्रीय साहित्य का जन्म हुआ जो एक तरफ तो भारतवासियों के बढ़ते आंदोलन का दर्पण था तो दूसरी तरफ उसे बढ़ाने का प्रयास था। आधुनिक हिन्दी के पिता भारतेन्दु हरिशचन्द्र मात्र साहित्यकार न थे, अपितु वे प्रसिद्ध सुधारक और स्वदेशी आंदोलन के अग्रदूत थे। उन्होंने सन 1876 ई0 में ''भारत दुर्दशा'' नामक नाटक लिखा जिसमें उन्होंने अंग्रेजों के राज में भारत की दुर्दशा का चित्र खींचा। अन्य रचनाकारों जैसे बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि की रचनाओं में भी देश प्रेम की झांकी मिलती है।

5. परिवहन तथा संचार के साधनों का विकास– परिवहन व संचार के साधनों में सुधार और विकास के कारण देश में राष्ट्रीय आंदोलन की और भी शीघ्र प्रगति हुई। रेलवे व नई डाक व्यवस्था ने देश को एकसूत्र में बाँधने में बहुत मदद की। भारतीय नेताओं ने अपने आप को इस स्थिति में अनुभव किया कि वे अपने राष्ट्रीय आंदोलन को देश के प्रत्येक कोने में ले जा सकें।

अंग्रेजों ने इन साधनों की स्थापना अपने व्यापारिक आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए की थी। इसके बिना वे भारत जैसे विशाल देश पर शांतिपूर्वक शासन नहीं कर सकते थे। किन्तु इन साधनों का लाभ भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में भी हुआ। इन विकसित साधनों ने भारत के सभी प्रदेशों को एक–दूसरे के समीप ला दिया, जिससे भौगोलिक सीमाएँ राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तित हो गई। इसके बिना राष्ट्रीय आंदोलन की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

6. प्रजातीय विभेद की नीति– ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों के असंतोष का एक महत्त्वपूर्ण कारण उनकी प्रजातीय विभेद की नीति थी। भारतीयों को बौद्धिक, शारीरिक एवं चारित्रिक दृष्टि से हीन समझा जाता था और इसी कारण से उन्हें लोक सेवाओं में, सेना में, परिषदों में एवं अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था। अनेक सार्वजनिक स्थलों पर भारतीयों का प्रवेश प्रतिबंधित किया गया। दादा भाई नौराजी ने लंदन की ईस्ट इंडिया एसोसिएशन से माँग की कि भारतीयों को अपशब्द कहना और अपमानित करना बंद किया जाए। इन घटनाओं से भारतीयों ने स्पष्ट समझ लिया कि उन्हें गुलामी जैसी हालत को बदलने के लिए ब्रिटिश शासकों से लड़ना पड़ेगा। प्रजातीय अहंकार का चरमोत्कर्ष सन 1883 ई. के इल्बर्ट बिल पर उपजे विवाद के समय देखा जा सकता है। एक सामान्य प्रेम की भावना के स्थान पर एक सामान्य घृणा की भावना ने भारतीय जनमानस को राष्ट्रीय रूप में एक होने की प्रेरणा दी।

7. 1857 के विद्रोह की अंग्रेजी प्रतिक्रिया से भारतीय अपमानित– सन 1857 ई. में विद्रोह के होने से पूर्व बहुत से अंग्रेज ऐसे थे जो ईमानदारी के साथ भारतीयों के भले के लिए कार्य करते थे, किन्तु विद्रोह के दिनों में दोनों ओर से बहुत सा रक्त बहाया गया। विद्रोह के पश्चात यूरोपियन ने भी असहाय तथा निर्दोष भारतीयों से बदला लिया तथा दमनकारी नीति अपनाई। भारतीयों को देश में प्रशासन के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण पदों तथा विधान मण्डलों से वंचित कर दिया गया।

इस प्रकार के अपमान व अत्याचार के फलस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता की प्रवृत्ति को बल मिला।

8. सामाजिक एवं धर्म सुधार आंदोलन– हिन्दू समाज व धर्म में अनेक कुरीतियाँ व कमियाँ तथा

ईसाई धर्म का खुलापन आमने–सामने था। अंग्रेजों द्वारा उसे अपनाने वालों को दिये गये लालच व लाभों के परिणामस्वरूप पढ़े लिखे भारतीयों में ईसाई धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया, जिससे वे ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। इससे राजाराम मोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, एनी बेसेन्ट आदि भारतीयों का हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों व कमियों की ओर ध्यान गया। शुरू के धर्म सुधारकों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धान्त को धर्म के क्षेत्र में प्रचारित किया। वास्तव में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और अन्य संस्थाएँ पुराने धर्म को नये समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रहे थे। भारत के आरम्भिक धर्म सुधार आंदोलन में ऐसे धार्मिक दृष्टिकोण को विकसित करने की कोशिश की जो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख आदि सभी समुदायों की एकता कायम कर सके। भारत के प्रथम राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप पहले धार्मिक था फिर धीरे–धीरे राष्ट्रवाद की भावना गहरी होती चली गई। उसके साथ उसका स्वरूप धर्म निरपेक्ष होने लगा।

9. अंग्रेज सरकार की खुले व्यापार की नीति– अंग्रेज सरकार की खुले व्यापार की नीति देश के विकास के मार्ग में बाधक थी।

भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश शासन के काल में बिगड़ चुकी थी। चार करोड़ भारतीयों को दिन में केवल एक बार खाना खाकर संतुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैंड भूखे किसानों से बलपूर्वक कर प्राप्त करता था। यहाँ अपना माल भेजकर लाभ कमाता था। इस प्रकार ब्रिटेन के अतुल्य ऐश्वर्य में और अधिक वृद्धि होती रही तथा भारत गरीबी के दुष्चक्र में फंस गया।

10. इल्बर्ट बिल विवाद– प्रचलित न्याय प्रणाली के अनुसार प्रेसीडेंसी को छोड़कर अन्य कहीं भी अंग्रेजों के विरुद्ध अभियोगों की सुनवाई केवल अंग्रेज न्यायाधीश ही कर सकते थे। कोई भारतीय न्यायाधीश ऐसा नहीं कर सकता था। लॉर्ड रिपन ने न्याय प्रणाली में समानता स्थापित करने के लिए अपनी परिषद के विधि सदस्य सी.पी. इल्बर्ट को इस सबंध में एक विधेयक प्रस्तुत करने को कहा। अतः इल्बर्ट ने एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें भारत में रहने वाले यूरोपियनों के विरुद्ध अभियोग की सुनवाई का अधिकार भारतीय मजिस्ट्रेटों को देने की व्यवस्था की। इस विधेयक से समस्त यूरोपियनों में खलबली मच गयी। अंग्रेजों ने इसे काला कानून कहा। भारत के अधिकांश गैर सरकारी अंग्रेज इस विरोध में सम्मिलित हो गये। यूरोपियनों के इस संगठित विरोध ने भारतीयों की आँखे खोल दीं। उन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक प्रगति के लिए संगठित होना आवश्यक है। इसी आंदोलन से प्रेरित होकर बाद में भारतीयों ने संस्थाओं का निर्माण शुरू किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व राजनीतिक संस्थाओं का उदय

कांग्रेस की स्थापना से पूर्व देश के अलग–अलग क्षेत्रों में अनेक राजनीतिक संस्थाओं का निर्माण किया गया जिन्होंने भले ही अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ही सही, किन्तु राष्ट्रवाद के उदय में अपना योगदान दिया। भारतवासियों के लिए यह विचार नया ही था कि लोग किसी राजनीतिक संगठन को तैयार कर सकते हैं। सन 1838 ई0 में बंगाल के जमींदारों ने लैंड होल्डर्स सोसायटी बनाई जिसने कर मुक्त भूमि के अपहरण का विरोध किया तथा कुछ अंशों तक उसे सफलता भी मिली। तत्पश्चात अनेक संस्थाएँ बनी जो राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु सरकार को ज्ञापन देती रहीं। सन 1851 ई0 में कलकत्ता के जमींदारों ने राजनीतिक उद्देश्य से ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन नामक संस्था बनायी। बड़े व्यापारियों और जमींदारों ने मिल कर सरकार के सम्मुख प्रशासनिक सुधार की माँग की। इन संस्थाओं ने अपने–अपने प्रांतों की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया।

सन 1857 के बाद के दशकों में उच्च शिक्षा का प्रसार हुआ तो बुद्धिजीवियों ने यह अनुभव किया कि

जमींदारों के संगठन के अलावा उन्हें भी अलग से अपने विचार रखने चाहिए। दादा भाई नौरोजी ने लंदन में ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन स्थापित करके भारत के प्रमुख नगरों मे इसकी शाखाएँ स्थापित की। सन 1870 ई. में महादेव गोविन्द रानाडे ने पूना सार्वजनिक सभा बनाई जिसमें महाराष्ट्र क्षेत्र में राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाई। सन 1876 ई0 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की। इस संस्था ने लम्बी अवधि तक प्रमुख विषयों पर भारतीयों की आवाज को सरकार तक पहुँचाने का कार्य किया। इस संस्था के नेताओं ने अपनी संस्था को अखिल भारतीय स्वरूप देने की भरसक कोशिश की लेकिन वे अनेक कारणों से सफल नहीं हो सके। वह मूलतः बंगाल का ही संगठन रहा। अतः दिसम्बर, 1883 में इंडियन एसोसिएशन के प्रयत्नों से इण्डियन नेशनल कान्फ्रेंस का पहला सम्मेलन कलकत्ता में हुआ। इसमें विभिन्न क्षेत्रों से आये लोगों ने भाग लिया। इसमें प्रथम प्रस्ताव द्वारा माँग की गई कि सिविल सर्विस की परीक्षा उसी समय भारत में भी ली जाये जब ब्रिटेन में होती है तथा इसमें बैठने की आयु बढ़ाकर 22 वर्ष कर दी जाये। दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कोष के संग्रह के महत्त्व को जोर दिया गया। तीसरे प्रस्ताव में भारत में प्रतिनिधि विधानसभाओं की माँग की गई। चौथे प्रस्ताव में आर्म्स एक्ट के रद्द करने की माँग की गई तथा पाँचवे प्रस्ताव में इल्बर्ट बिल पर हुये समझौते पर खेद प्रकट किया। पूर्णतः सफल न होने पर भी सम्मेलन का अपना महत्त्व रहा। यह सभी राष्ट्रीय नेताओं को एक मंच पर लाने और संयुक्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की तरफ पहला कदम था। दूसरी इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस कलकत्ता में सन 1885 ई0 में हुई। इसी क्रम में 28 दिसम्बर, 1885 को व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में मुम्बई में ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' की स्थापना हुई। इसमें देश भर के 72 प्रतिनिधि मौजूद थे। ए.ओ. हयूम इसके सचिव थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में देश में स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन चलाया गया।

कांग्रेस के नेतृत्व में चलाये गये राष्ट्रीय आंदोलन को तीन चरणों में बाँटा जाता है :–

1. उदारवादी चरण (सन 1885 से सन 1905)
2. उग्रवादी चरण (सन 1905 से सन 1920)
3. गाँधी युग (सन 1920 से सन 1947)

राष्ट्रीय आंदोलन का उदारवादी युग (सन 1885 से सन 1905)

सन 1885 ई0 से सन 1905 ई0 तक के राष्ट्रीय आंदोलन को ''उदारवादी चरण'' कहा जाता है। इस अवधि में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व वकील, डॉक्टर, अध्यापक, लेखक, पत्रकार आदि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के हाथों में रहा। नेताओं में दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले आदि प्रमुख थे। इस चरण के नेताओं का विश्वास था कि अभी लोगों को राजनीतिक मामलों पर जागरूक करना जरूरी है, ताकि उनमें अंग्रेजी राज का विरोध करने का आत्मविश्वास पैदा हो सके। इस दौर के राष्ट्रवादियों का समस्त दर्शन एवं कर्म इसी दृष्टि से प्रेरित था। इनका मुख्य उद्देश्य एक ऐसा आर्थिक–राजनीतिक कार्यक्रम तैयार करना था, जिस पर विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, जातियों, भाषायी समूहों एवं वर्गों की आपसी सहमति हो सके।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में उपस्थित सदस्य

सर्वप्रथम राष्ट्रवादी नेताओं ने साम्राज्यवाद का आर्थिक विवेचन किया। उनके अनुसार अंग्रेजी उपनिवेशवाद का सार था भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना। भारत अंग्रेजी शासन के अधीन दिन पर दिन गरीब होता जा रहा था। यह गरीबी भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का परिणाम थी और यह पिछड़ापन अंग्रेजी शासन का परिणाम था। अंग्रेजी शासन में भारत के पारम्परिक उद्योगों को नष्ट कर दिया और आधुनिक उद्योगों की प्रक्रिया को धक्का पहुँचाया। अंग्रेजी नीतियों द्वारा भारतीय कृषि का भी शोषण हुआ। उन्होंने सरकारी खर्चों की कड़ी आलोचना की। सरकारी पैसे का एक बड़ा हिस्सा सेना और प्रशासन में खर्च होता था लेकिन लोगों की शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जरूरतों की उपेक्षा की जाती थी। इन्होने धन निष्कासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिससे यह साबित किया कि भारत से इंग्लैंड को अनेक माध्यमों द्वारा धन भेजा जाता है जिसके बदले में भारत को कोई प्रतिफल या लाभ प्राप्त नहीं होता है।

कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य – प्रारंभ में कांग्रेस का उद्देश्य भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त करना नहीं था। उदारवादियों को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास था। कांग्रेस का उद्देश्य प्रतिनिधि सभाओं का विस्तार तथा उनमें भारतीयों की अधिकाधिक संख्या में वृद्धि करना था। साथ ही कांग्रेस ने अपने प्रारम्भिक अधिवेशनों में इन परिषदों के प्रतिनिधि चरित्र को विकसित करने की दृष्टि से निर्वाचित सदस्यों की एक निश्चित संख्या की भी माँग की थी। उदारवादियों ने प्रार्थना पत्रों, स्मरण पत्रों तथा प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा ब्रिटिश सरकार से अपनी न्याय युक्त माँगों को मानने का आग्रह किया था। इस युग में कांग्रेस द्वारा कई राजनीतिक माँगे पेश की गईं जो निम्न प्रकार से हैं :

1. विधानमण्डलों का विस्तार हो और उनके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हों तथा उनमें भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि की जाए।
2. न्याय व्यवस्था में जूरी का प्रयोग हो।
3. कार्यकारिणी तथा उच्च नौकरियों में भारतीयों को स्थान मिले तथा भारतीयों को उच्च सैनिक शिक्षा दी जाए।
4. शस्त्र कानून में संशोधन किया जाए तथा भारतीयों को अधिकार दिया जाए।
5. सन 1905 ई0 में गोखले ने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की माँग की। सन 1906 ई0 में इसी माँग को दादा भाई नौरोजी ने दोहराया।

कांग्रेस ने सामाजिक और आर्थिक जीवन के क्षेत्र में आवश्यक सुधार के लिए निम्न माँगें रखी :

1. भूमि कर में कमी की जाए एवं सिंचाई की उचित व्यवस्था की जाए।
2. भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाए एवं उनका आधुनिकीकरण किया जाए।
3. भारत से बाहर भेजे जाने वाले अनाज पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
4. प्रशासनिक व्यय में कमी की जाए।
5. नमक कर को समाप्त किया जाए।

ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस – प्रारम्भ में कांग्रेस की स्थापना को ब्रिटेन की महान विजय समझा जाता था परन्तु सरकार और कांग्रेस के बीच यह मधुर सम्बध अधिक समय तक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही सरकार इस संगठन से भयभीत हो गई तथा इसमें खतरा दिखाई देने लगा। सरकार ने कांग्रेस को प्रोत्साहन देना बंद कर दिया। सन 1888 ई0 से सरकार की कांग्रेस सम्बधी नीति में परिवर्तन हुआ। लॉर्ड डफरिन ने एक भोज के अवसर पर कहा ''अब कांग्रेस का झुकाव राजद्रोह की ओर हो गया है और यह संस्था

शिक्षित भारतीयों का नाम मात्र का प्रतिनिधित्व करती है।'' 1890 ई0 में सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसके अनुसार सरकारी कर्मचारियों को कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने की मनाही की गई। इस प्रकार सरकार और कांग्रेस के बीच आपसी सम्बधों में कटुता बढ़ने लगी।

सरकार के इस बदलते हुए रवैये के बावजूद कांग्रेस अपने रास्ते पर चलती रही। निस्संदेह कांग्रेस की कार्य नीति में कुछ परिवर्तन आया। कांग्रेस के नेताओं ने वाइसराय के विचारों का खण्डन करना शुरू किया। धीरे–धीरे कांग्रेस की ओर से विभिन्न भागों में सभाएँ की जाने लगीं और राष्ट्रीय माँगों की पूर्ति के लिए प्रस्ताव पारित होने लगे। किन्तु अब भी कांग्रेस नेताओं का अंग्रेजों में विश्वास था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने पूना कांग्रेस में भाषण देते हुए भारतवासियों को ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार बताया। इंग्लैण्ड में भी कांग्रेस के कार्यों का प्रचार तेजी से होने लगा जिसमें कुछ अंग्रेजों ने भी दिलचस्पी दिखाई। ब्रिटिश संसद के सदस्य चार्ल्स ब्रेडला और सर विलियम वेडरबर्न के नाम इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन 1890 ई0 में इंडियन पार्लियामेंटरी कमेटी की स्थापना हुई। इस कमेटी ने 1890 ई. में ''इंडिया'' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की जो सन 1892 ई. में मासिक और 1896 ई. में साप्ताहिक रूप से प्रकाशित होने लगी। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 1892 ई. में भारतीय परिषद अधिनियम पास हुआ जिससे भारतीय विधानमंडल में कुछ सुधार हुए। यह सुधार अधिनियम कांग्रेस के प्रयत्नों का ही प्रतिफल था। परन्तु कांग्रेस इससे संतुष्ट नहीं हुई। यही नहीं, भारतीयों को जो थोड़े बहुत राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए थे उन पर भी कुठाराघात होने लगा। 1898 ई. में एक कानून पारित हुआ जिसके अनुसार अंग्रेजी शासन की आलोचना करना अपराध माना गया। सन 1899 ई. में कलकत्ता निगम के भारतीय सदस्यों की संख्या को घटा दिया गया। सन 1904 ई. में प्रेस की स्वतंत्रता सीमित कर दी गई। बालगंगाधर तिलक तथा अनेक समाचार पत्रों के सम्पादकों को कैद कर लिया गया। इससे राष्ट्रीय नेताओं में अत्यधिक अंसतोष पैदा हुआ। सरकार भी कांग्रेस के प्रस्तावों को नकारती रही जिससे कांग्रेस के कुछ सदस्यों को विश्वास हो गया कि केवल प्रस्ताव पारित करने से उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी, इसके लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे।

उदारवादियों की सफलता– उदारवादियों के कार्यक्रम में कमियाँ थीं और उन्हें अपने उद्देश्य में विशेष सफलता नहीं मिली लेकिन उनके महत्त्व को नजरअंदाज नहीं कर सकते। उन्होंने खुलकर सरकार का सामना नहीं किया क्योंकि वे तत्कालीन परिस्थिति से परिचित थे। यदि वे उग्र नीति अपनाते तो आरंभ में ही सरकार कठोरता से उनका दमन करती। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने जो सेवा भारत के लिए की वह भी न हो पाती। वे भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः कांग्रेस के उदारवादी नेताओं के प्रयास से ही भारत में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ी थी। उन्हीं के प्रयास से औपनिवेशिक स्वशासन तथा प्रशासनिक सुधार की माँगे की जाने लगी थी। भारतीयों को राजनीतिक प्रशिक्षण दिलाने एवं जागरूक करने की दिशा में उनका योगदान प्रशंसनीय था।

उदारवादियों के प्रयास से ही सन 1892 ई0 का भारतीय परिषद अधिनियम पारित हो सका था। भारत में प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं के विकास में यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम था।

उदारवादियों के राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव से एक लाभ यह हुआ कि राष्ट्रवादियों के हृदय में आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की भावना जाग्रत हुई। वे धीरे–धीरे समझने लगे कि ब्रिटिश शासन उनका कल्याण करना नहीं चाहता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की नींव इन्हीं बीस वर्षों में उदारवादियों के प्रयास से डाली गई। उदारवादी नेताओं ने ही हमें इस योग्य बनाया कि हम स्वतंत्रता की माँग सरकार के समक्ष रख सके। डा0 पट्टाभि

सीतारमैया ने उदारवादियों के कार्यों की प्रशंसा में यह विचार व्यक्त किया कि प्रारम्भिक उदारवादियों ने ही आधुनिक स्वतंत्रता की इमारत की नींव डाली। उनके प्रयत्नों से ही इस नींव पर एक–एक मंजिल करके इमारत बनती चली गई। पहले उपनिवेशों के ढंग का स्वशासन, फिर साम्राज्य के अंतर्गत होम रूल, इसके ऊपर स्वराज और सबसे ऊपर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें बन सकीं।

राष्ट्रीय आंदोलन का उग्रवादी युग (सन 1905 से 1920) –

सन 1905 ई. के बाद राष्ट्रीय आंदोलन ने एक नए दौर मे प्रवेश किया। इसके नेतृत्व की बागडोर उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादी नेताओं ने संभाली। गरमपंथी नेतृत्व ने ब्रिटिश शासन एवं भारतवासियों के मध्य बुनियादी अन्तर्विरोध पर निरंतर बल दिया और उनके अनुसार राष्ट्रीय आंदोलन इस अन्तर्विरोध का ही परिणाम था। बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, विपिनचन्द पाल एवं लाला लाजपतराय गरम दल के प्रमुख नेता थे।

लोकमान्य तिलक पहले नेता थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में स्वराज शब्द का प्रयोग किया। बाद में गांधीजी ने उनके बारे में कहा कि ''लाखों अन्य देशवासियों की तरह मैं भी उनके अपार ज्ञान, अदम्य साहस, देश प्रेम, व्यक्तिगत जीवन में सादगी और पवित्रता तथा महान त्याग का प्रशंसक हूँ। अपने समकालीन नेताओं की तुलना में उन्होंने अपने देशवासियों को सबसे अधिक प्रेरित किया। उन्होंनें हमारे हृदयों में स्वराज की भावना का संचार किया।'' अंग्रेजी सरकार की बुराइयों का जितना ज्ञान लोकमान्य तिलक को था उतना शायद उस समय के किसी और नेता को नहीं था। तिलक पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूरों और किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहचाना। उन्होंने मुम्बई के मजदूरों के बीच सक्रिय रूप से राजनीतिक कार्य किया। इसी का परिणाम था कि जब सन 1908 में तिलक को छह वर्षों की सजा दी गई, तब मिल के मजदूरों और रेल कर्मचारियों ने छह दिन की हड़ताल की।

गरमपंथी नेता बड़े पैमाने पर राजनीतिक संघर्ष और उसमें जनता की सक्रिय भागीदारी के समर्थक थे। उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज को राष्ट्रीय आंदोलन का मूलमंत्र बना दिया। उन्होंने नरमपंथियों के संवैधानिक उपायो को 'भिक्षावृत्ति' बताते हुए सरकार के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध पर आधारित व्यापक आंदोलन पर बल दिया। गरम दल के नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य को स्पष्ट शब्दों में सामने रखा। तिलक ने घोषणा की ''स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेगें।'' अब राष्ट्रीय आंदोलन अपने विकास के अगले दौर में प्रवेश के लिए तैयार था इसके लिए वातावरण तब तैयार हुआ जब अंग्रेजी सरकार ने 20 जुलाई, 1905 को बंगाल के विभाजन का फैसला किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल–विभाजन के फैसले को राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने की ब्रिटिश चाल के रूप में देखा। उन्होंने इस फैसले का विरोध किया और इसके खिलाफ बंगाल में विशाल जन–आंदोलन संगठित किया। शुरू में इस आंदोलन का नेतृत्व सुरेन्द्र नाथ बनर्जी एवं कृष्ण कुमार मित्र जैसे नरमपंथियों के हाथों में था लेकिन बाद में नेतृत्व गरम दल के नेताओं विपिन चन्द पाल, अरविन्द घोष एवं अश्विन कुमार दत्त के हाथों में आ गया।

बंग–भंग विरोधी आंदोलन का उद्घाटन 7 अगस्त, 1905 को हुआ, जब कलकत्ता में विभाजन के विरोध में एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके बावजूद जब 16 अक्टूबर, 1905 को बंग–भंग का निर्णय लागू कर दिया गया तो आंदोलन पूरे बंगाल में विस्तृत हो गया। कुछ ही समय में विदेशी सामान के बहिष्कार एवं केवल भारत में बने स्वदेशी सामान के इस्तेमाल से जुड़ी राजनीतिक गतिविधि प्रांरभ हुई। आंदोलन के नेताओं ने अंग्रेजी राज के कड़े मुकाबले के लिए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया। बंग–भंग का

मसला भारत के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गया।

स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा एवं स्वराज के नारों का धीरे–धीरे अन्य प्रान्तों में भी प्रसार होने लगा। सारा देश एक ही तरह के विचारों और राजनीति के सूत्र में बंधने लगा। लोकमान्य तिलक इस काल के सबसे बड़े नेता के रूप में उभरे। अंग्रेजी सरकार ने इस आंदोलन का जवाब दमन से दिया। सरकार ने सभाओं और प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगा दिया। सरकार ने जाति, प्रान्त, भाषा और सर्वाधिक, धर्म के आधार पर लोगों में फूट डालने का असफल प्रयास किया लेकिन तिलक की गिरफ्तारी तथा विपिन चन्द्र पाल एवं अरविन्द घोष द्वारा राजनीति से संन्यास लेने के बाद आंदोलन अधिक समय तक नहीं चल सका।

इस आंदोलन ने लोगों को राजनीतिक रूप से सजग एवं सक्रिय बनाया। उनमें आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता का भी संचार हुआ। अन्ततः सरकार को राष्ट्रवादियों की माँग के आगे झुकना ही पड़ा। सन 1911 ई0 में बंगाल–विभाजन के फैसले को वापस ले लिया गया। बंगाल का पुनः एकीकरण हुआ। बिहार और उड़ीसा को विशाल बंगाल से निकालकर एक अलग प्रांत बना दिया गया।

इस बीच कांग्रेस के मंच पर सन 1905 ई0 से सन 1907 ई0 के दौरान नरमपंथियों और गरमपंथियों के पारस्परिक मतभेद बढ़ते जा रहे थे। गरमपंथी आश्वस्त थे कि आजादी की लड़ाई शुरू हो गई है तथा जनता जागरूक हो चुकी है। अतः यही वह उचित समय है जब बंगाल में आंदोलन को और तेज किया जाए तथा इसे देश के अन्य प्रदेशों तक फैलाया जाए। उस समय इन गरमपंथियों के नेता थे अरविन्द घोष। दूसरी ओर, नरमपंथियों का मानना था कि गरमपंथियों के साथ रहना बहुत ही खतरनाक है। सरकार साम्राज्यवाद विरोधी किसी भी आंदोलन का दमन करने के लिए तैयार बैठी है, ऐसे में दमन को न्यौता देने का क्या औचित्य है ? इन नरमपंथियों के नेता थे – फिरोजशाह मेहता। 26 दिसम्बर, 1907 को ताप्ती नदी के किनारे सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यहाँ औपचारिक रूप से कांग्रेस में फूट पड़ गई।

सन 1908 ई0 के बाद समूचा राष्ट्रीय आंदोलन पतन की ओर उन्मुख हो गया लेकिन लोगों के दिलों में राष्ट्रीय भावनाएँ मौजूद थीं। सन 1914 ई0 में जब 6 साल की कैद के बाद तिलक जेल से छूटे, तो उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को पुनः पटरी पर चढ़ाया।

सन 1914 ई0 में प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में तथा सन 1915–16 में होम रूल लीगों की स्थापना से राष्ट्रीय आंदोलन का पुनरूत्थान हुआ। पहले होम रूल लीग के नेता लोकमान्य तिलक थे और दूसरे की नेता एनी बेसेन्ट थीं। दोनो होम रूल लीगों ने समन्वित तरीके से मीटिंग, भाषणों, दौरों, परचें और सम्मेलनों के द्वारा देश भर में प्रचार किया। उनकी मुख्य माँग थी – युद्ध के समाप्त होने पर होम रूल या स्वराज की प्राप्ति। सन 1916 ई0 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन होम रूल लीग के सदस्यों के लिए कांग्रेस में अपनी ताकत दिखाने का एक अच्छा मौका था।

सन 1916 ई0 के लखनऊ अधिवेशन में तिलक को पुनः कांग्रेस में शामिल कर लिया गया। इसी अधिवेशन में '' कांग्रेस मुस्लिम–लीग समझौता'' हुआ जो लखनऊ पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस समझौते में एनी बेसेन्ट और तिलक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तिलक ने एक और प्रस्ताव रखा कि एक कार्यकारिणी का गठन किया जाए जो कांग्रेस के निर्णयों व कार्यक्रमों को अमली रूप दे सके परन्तु यह प्रस्ताव मंजूर न हो सका। सन 1920 ई0 में गांधीजी ने कांग्रेस संविधान को जनाधारित आंदोलन के संचालन के अनुरूप नया रूप दिया तो उन्होंने तिलक के इसी प्रस्ताव को मानना जरूरी समझा।

क्रांतिकारी आंदोलन का प्रथम चरण –जिस समय कांग्रेस के राजनीतिक मंच पर गरम और नरम दलों का जन्म हो रहा था उस समय देश में क्रांतिकारी विचारधारा का प्रादुर्भाव हो रहा था। इस क्रांतिकारी

आंदोलन की पृष्ठभूमि गरमपंथी नेताओं के द्वारा ही तैयार की गई थी। गरमपंथी में एक वर्ग ऐसा भी था जो बलपूर्वक अंग्रेजी राज्य को समाप्त करना चाहता था। यह वर्ग क्रांतिकारियों का था। यह वैधानिक आंदोलन में कतई विश्वास नहीं करता था। क्रांतिकारी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किसी भी साधन का प्रयोग उचित मानते थे।

क्रांतिकारी आंदोलन का मुख्य क्षेत्र बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब था। सन 1905 ई0 के बंग–भंग और स्वदेशी आंदोलन ने क्रांतिकारी आंदोलन को एक सबल सहारा दिया। सरकार की दमनकारी तथा प्रतिक्रियावादी नीति के परिणामस्वरूप ही इस आंदोलन का उग्र प्रचार हुआ। बंगाल में इस आंदोलन के प्रमुख नेता थे बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेंद्र दत्त। उन्होंने **'युगांतर'** और **'संध्या'** पत्रिकाओं द्वारा उग्रवाद का प्रचार किया और बताया कि हमारी दृष्टि सुंदर भविष्य में होने वाली क्रांति पर जमी हुई है और हम उसके लिए तैयार होना चाहते हैं।

क्रांतिकारी आंदोलन धीरे–धीरे जोर पकड़ने लगा। फलतः, कई गुप्त क्रांतिकारी संस्थाएँ स्थापित हुईं। इनमें एक संस्था थी **अनुशीलन समिति।** इसकी शाखाएँ बंगाल में चारों तरफ फैली हुई थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा लाला हरदयाल के प्रयास से लंदन में भी क्रांतिकारी समितियाँ स्थापित की गईं। राजनीतिक हत्याएँ तथा डकैतियाँ बढ़ने लगीं। कलकत्ता में प्रधान प्रेसीडेंसी–मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड ने स्वदेशी आंदोलन के कार्यकर्ताओं को कोड़े लगवाये थे और कठोर दंड दिया था। शीघ्र ही किंग्सफोर्ड जज बनकर मुजफ्फरपुर आया। क्रांतिकारियों ने उसकी हत्या कर उससे बदला लेने का निश्चय किया। यह काम खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौंपा गया। उन्होंने किंग्सफोर्ड के बँगले की ओर से आती हुई एक गाड़ी पर 30 अप्रैल, 1908 को बम फेंक दिया। उन्होंने समझा था कि गाड़ी में किंग्सफोर्ड होगा। किंतु, दुर्भाग्य से उस गाड़ी में मिस और मिसेज कैनेडी नामक दो महिलाएँ थीं जो मुजफ्फरपुर के एक वकील कैनेडी की पत्नी और पुत्री थी। बम के कारण दोनों की मृत्यु हो गई। प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या कर ली पर खुदीराम बोस पकड़े गये और उसे फाँसी की सजा दे दी गई। इस प्रकार, वह देश की स्वतंत्रता की बलिवेदी पर शहीद हो गया। इस घटना के बाद कलकत्ता में एक बहुत बड़े क्रांतिकारी षड्यंत्र का पता लगा जिसमें अरविंद घोष, बारींद्र कुमार घोष और कई अन्य युवक गिरफ्तार कर लिए गए। यह घटना सामान्यतः अलीपुर षड्यंत्र केस के नाम से विख्यात है। सन 1913 ई0 में लाला हरदयाल ने गदर पार्टी की स्थापना की। इस दल ने 1913 ई0 के फरवरी महीने में पंजाब में सैनिक विद्रोह करने का निश्चय किया।

सन 1907 ई0 में क्रांतिकारी आंदोलन की पंजाब में शुरूआत हुई। सरदार अजीत सिंह, भाई परमानंद, बालमुकुंद और लाला हरदयाल ने क्रांतिकारियों को संगठित किया। महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों में श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और गणेश सावरकर थे।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण– महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के पूर्णतया असफल होने से क्रांतिकारियों में पुनः उग्रता हुई। बंगाल में पुरानी अनुशीलन तथा युगान्तर समितियाँ पुनः जाग उठीं तथा उत्तरी भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों में क्रान्तिकारी संगठन बन गए। परन्तु प्रमुख बात यह थी कि अब यह समझा गया कि एक अखिल भारतीय संगठन सफलता के लिए आवश्यक है। अतः अक्टूबर, 1924 में कानपुर में समस्त क्रान्तिकारी दलों का एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें सचिन्द्रनाथ सान्याल, जगदीशचन्द्र चटर्जी तथा रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी नेताओं तथा भगत सिंह, शिव वर्मा, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे युवा नेताओं ने भाग लिया। इसके फलस्वरूप सन 1928 ई0 में इण्डियन रिपब्लिक आर्मी का जन्म हुआ तथा विभिन्न प्रान्तों में इसकी शाखाएँ स्थापित की गईं।

इस चरण में क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्थान पर समाजवादी विचाराधारा से प्रेरित, संयुक्त भारत में संघीय गणतन्त्र की स्थापना करना था। इन क्रांन्तिकारियों ने अपने कार्य की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने के लिए निजी व्यक्तियों को न लूट कर, सरकारी कोषों को अपना निशाना बनाने का निश्चय किया।

09 अगस्त, 1925 को क्रान्तिकारियों ने सहारनपुर, लखनऊ लाइन पर काकोरी जाने वाली गाड़ी को सफलतापूर्वक लूटा। इस काकोरी काण्ड के अभियोग में जनता ने बहुत सी सहानुभूति का प्रदर्शन किया।

पंजाब में क्रान्तिकारियों ने सन 1928 ई0 में भगत सिंह के नेतृत्व में, साइमन आयोग के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए लाला लाजपतराय पर किए गए लाठी चार्ज के फलस्वरूप हुई मृत्यु का बदला लेने के लिए लाहौर के सहायक पुलिस कप्तान साण्डर्स की हत्या कर दी। पुलिस ने आम जनता पर दमन–चक्र चलाया। जनता में यह भावना हो गई कि क्रान्तिकारी अपना कार्य करके निकल जाते हैं और जनता दमन का शिकार हो जाती है। इस पर इण्डियन रिपब्लिक आर्मी ने दो क्रांतिकारियों को गिरफ्तार होने के लिए भेजा। इस योजना के अनुसार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली में केन्द्रीय असेम्बली में 08 अप्रैल, 1929 को खाली बैंचों पर बम फेंके और गिरफ्तार हो गए। उनकी इच्छा किसी की हत्या करने की नहीं थी। उनका मानना था कि बधिरों को सुनाने के लिए बहुत तेज आवाज करनी पड़ती है। बाद में लाहौर षड्यन्त्र केस में भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को 23 मार्च, 1931 को फांसी दे दी गई।

इसी प्रकार बंगाल में सूर्यसेन ने चटगांव शस्त्रागार पर धावा किया। (अप्रैल, 1930) इन क्रान्तिकारियों ने अपनी वीरता के प्रत्यक्ष प्रमाण तो दिए परन्तु इससे कुछ स्पष्ट लाभ नहीं हुआ। सूर्यसेन अन्त में पकड़े गए और 1933 में फांसी पर लटका दिए गए।

आज भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले क्रान्तिकारी उन शहीदों के रूप में याद किए जाते हैं जो मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

राष्ट्रीय आंदोलन का गाँधी युग (सन 1920 से 1947) –

दिसम्बर, 1919 में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अंतिम बार सहभागिता की। इसके तीन माह बाद तिलक की मृत्यु हो गई। अमृतसर कांग्रेस के दौरान तिलक ने एक अनौपचारिक वार्ता में यह कहा था कि ''मैं इसे (होमरूल) देखने के लिए जीवित न रहूँ, लेकिन हम यदि कड़ी मेहनत करें और इस नए काम में अपने मन को एकाग्र कर सकें तो नई पीढ़ी इसे अवश्य हासिल कर पाएगी। बहरहाल मैं मानता हूँ कि पंजाब की घटनाएँ, मार्शल लॉ शासन और जालियाँवाला बाग नरसंहार ने राजनीतिक वातावरण को विद्रोह की भावना से ओत–प्रोत कर दिया है जिसके नए प्रतीक गाँधी है। यद्यपि मैं मानता हूं कि अनुक्रियात्मक सहयोग से अधिकतम लाभ मिलेगा, फिर भी मैं रास्ते में रूकावट नहीं बनूँगा।''

अब राष्ट्रीय आंदोलन के आगामी चरणों के निर्विवाद नेता के रूप में गाँधी जी का उदय हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ रंग भेद के आधार पर प्रजातीय दुर्व्यवहार किया जाता था। गांधीजी ने इसके खिलाफ संघर्ष का फैसला किया। सन 1893 ई0 से 1914 ई0 तक चलने वाले संघर्ष में गांधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन के दर्शन का विकास किया।

जनवरी, 1915 में गांधीजी 45 वर्ष की अवस्था में भारत लौटे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो ''भिखारी के लिबास में एक महान आत्मा'' लौट आई थी। गांधीजी ने गोखले को अपना ''राजनीतिक गुरू'' बनाया जिनकी सलाह पहले वर्ष पर मूक दर्शक रहकर भारत की स्थिति का अध्ययन किया। राजकोट और पोरबंदर में अपने लोगों से भेंट करने के बाद गांधीजी शांति निकेतन गए। रवीन्द्रनाथ ने ही गाँधी जी को सर्वप्रथम ''महात्मा'' कहकर पुकारा। वहाँ से साल भर देश का दौरा करते रहे और अहमदाबाद में अपने आश्रम को जमाने का काम करते रहे।

गांधीजी ने भारत में अपनी राजनीतिक गतिविधियों की शुरूआत सन 1917 ई0 में उत्तरी बिहार में चंपारन नामक जगह से की। चंपारन में गांधी ने नील के बागान मालिकों द्वारा कृषकों के उत्पीड़न के विरुद्ध अभियान चलाया। वे अभी चंपारन में ही थे कि साबरमती आश्रम से शीघ्र अहमदाबाद लौटने का संदेश मिला। वहां कपड़ा मिलों के मजदूरों ने बेहतर मजदूरी की मिल–मालिकों से माँग की। अगले साल गांधीजी ने गुजरात के खेड़ा के किसानों के प्रशासन के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया।

चंपारन, अहमदाबाद एवं खेड़ा आंदोलनों ने गांधीजी को देश की जनता के नजदीक आने का अवसर दिया। उन्हें जनता की ताकत और उसकी कमजोरियों का पता चला। उन्होंने इन संघर्षो में अपने सत्याग्रह–दर्शन का व्यावहारिक प्रयोग किया। इन्हीं लड़ाइयों में गांधीजी को राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मजहरूल हक, महादेव देसाई और सरदार पटेल जैसा युवा नेताओं का साथ मिला। वस्तुतः सरदार वल्लभ भाई पटेल गांधीजी के परम भक्तों में से थे। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने गुजरात के नाडियाद नामक स्थान पर एक कृषक परिवार में जन्म लिया था। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने अहमदाबाद में ''क्रिमिनल लॉयर'' के रूप में वकालत शुरू कर दी। सन 1915 ई0 में 'गुजरात सभा' से जिसके अध्यक्ष गांधीजी थे, इन्होंने अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। 'रोलट बिल' के विरुद्ध प्रदर्शन में सक्रिय भागीदारी, ''सत्याग्रह पत्रिका'' का प्रकाशन, असहयोग आंदोलन में सहयोग तथा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना के लिए ये पूर्णरूपेण जिम्मेदार थे। सन 1928 ई0 में बारदोली में किसान सत्याग्रह को सफल नेतृत्व प्रदान किया। इसी सत्याग्रह के बाद इन्हें सरदार की उपाधि मिले। ये गाँधी जी के विश्वसनीय साथी थे। सन 1946 ई0 में बम्बई के नाविक विद्रोह को शान्त करने में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिक भारत के निर्माताओं में सरदार पटेल प्रमुख थे। इन्होंने देशी रियासतों के एकीकरण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये लौहपुरूष

माने जाते थे। सन 1950 ई0 में इनकी मृत्यु हो गई।

अब गाँधी जी भविष्य के बड़े संघर्ष के लिए तैयार थे, जिसने आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को विश्व इतिहास का सबसे बड़ा जन आन्दोलन बना दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का आगामी घटनाक्रम– गाँधी जी के विचारों को इस चरण में व्यापक स्तर पर प्रयोग में लाया गया। इसीलिए सन 1920 ई0 के बाद के राष्ट्रीय आंदोलन के चरण को गांधीवादी चरण कहा जाता है।

रोलट सत्याग्रह– सन 1919 ई0 का वर्ष भारत के लिए अत्यंत असन्तोष का था। देश में फैल रही राष्ट्रीयता की भावना एवं क्रांतिकारी गतिविधियों को कुचलने के लिए ब्रिटेन को दमनात्मक शक्ति की आवश्यकता थी। रोलट समिति की सिफारिशों के आधार पर विलियम विन्सेन्ट ने दो विधेयकों का प्रस्ताव रखा। इन विधेयकों द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि जिस व्यक्ति पर राजद्रोही होने का सन्देह हो उसकी गतिविधि पर नियंत्रण रखा जाए, जिस व्यक्ति से शांति भंग होने की सम्भावना हो, उसे बन्दी बनाया जाए।

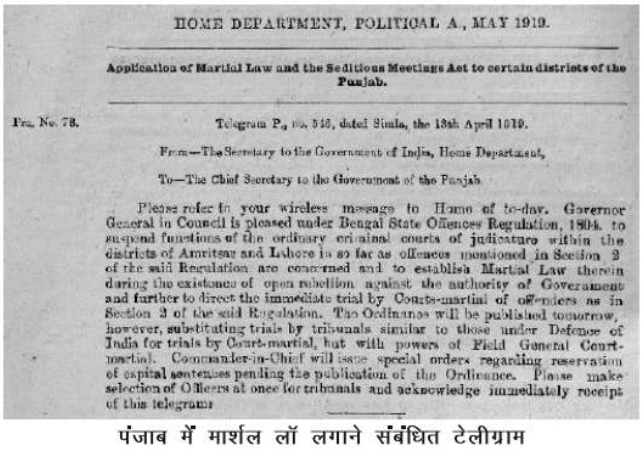

HOME DEPARTMENT, POLITICAL A., MAY 1919.

Application of Martial Law and the Seditious Meetings Act to certain districts of the Punjab.

Pro. No. 78.

Telegram P., no. 546, dated Simla, the 13th April 1919.

From—The Secretary to the Government of India, Home Department,

To—The Chief Secretary to the Government of the Punjab.

Please refer to your wireless message to Home of to-day. Governor General in Council is pleased under Bengal State Offences Regulation, 1804, to suspend functions of the ordinary criminal courts of judicature within the districts of Amritsar and Lahore in so far as offences mentioned in Section 2 of the said Regulation are concerned and to establish Martial Law therein during the existence of open rebellion against the authority of Government and further to direct the immediate trial by Courts-martial of offenders as in Section 2 of the said Regulation. The Ordinance will be published tomorrow, however, substituting trials by tribunals similar to those under Defence of India for trials by Court-martial, but with powers of Field General Court-martial. Commander-in-Chief will issue special orders regarding reservation of capital sentences pending the publication of the Ordinance. Please make selection of Officers at once for tribunals and acknowledge immediately receipt of this telegram.

पंजाब में मार्शल लॉ लगाने संबंधित टेलीग्राम

गांधीजी ने कहा कि "रोलट विधेयक" से छुटकारा पाने के लिए सत्याग्रह ही एकमात्र उपाय है। गांधीजी ने इस संदर्भ में गवर्नर – जनरल से भी इन पर पुनः विचार करने का अनुरोध किया परन्तु गांधीजी के अनुरोध एवं विधानसभा के भारतीय सदस्यों के विरोध करने पर भी 17 मार्च, 1919 को इनमें से एक विधेयक पास हो गया। जब संवैधानिक प्रतिरोध का अधिक प्रभाव नहीं हुआ तो गांधीजी ने सत्याग्रह शुरू करने का सुझाव दिया। उनकी अध्यक्षता में फरवरी, 1919 में एक सत्याग्रह सभा गठित की गई। 6 अप्रैल को जनता से हड़ताल की अपील की गई। जनता ने इस अपील पर बड़े उत्साह से अमल किया। तारीख के बारे में कुछ गलतफहमी के कारण दिल्ली में 30 मार्च को ही हड़ताल आयोजित कर ली गई जिसके दौरान काफी हिंसा फैली। बाकी जगहों पर भी हड़ताल के दौरान हिंसा हुई लेकिन पंजाब की घटनाएँ खतरनाक मोड़ ले रही थी।

जलियाँवाला बाग काण्ड– अमृतसर में भी सत्याग्रह के समर्थन में सभाएँ हुईं। वहाँ 6 अप्रैल तो शांति से निकल गया परन्तु 10 अप्रैल को अमृतसर के डिप्टी कमिशनर ने बिना किसी कारण पंजाब के दो नेताओं डा0 सत्यपाल और डा0 सैफुद्दीन किचलू को बंदी बनाकर उन्हें अज्ञात स्थान पर भेज दिया। इसका समस्त पंजाब में विरोध किया गया। उनकी रिहाई के लिए अमृतसर में हड़ताल घोषित कर दी गई। इस पर सेना बुलाई गई। सैनिकों ने प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाई। 11 अप्रैल को जनरल डायर ने सेना सहित अमृतसर पर अधिकार कर लिया।

इस गोलीकांड की निंदा करने हेतु 13 अप्रेल को दोपहर को जलियाँवाला बाग में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में 20000 के लगभग लोग उपस्थित थे। जनरल डायर ने बिना किसी चेतावनी के जनता पर गोलियाँ बरसाना आरम्भ कर दिया। 10 मिनट में 1650 गोलियां चली। जलियाँवाला बाग चारों और इमारतों से घिरा हुआ है। वहां से निकलने का केवल एक ही सँकरा मार्ग था। जनरल डायर के 150 सैनिक

उस दरवाजे को रोककर गोलियाँ बरसा रहे थे। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार मृतकों की संख्या 379 थी जबकि कांग्रेस की रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या 500 थी। सरकार के अनुसार आहतों की संख्या 15000 थी। डायर के सैनिक तब तक गोलियाँ चलाते रहे जब तक वे समाप्त नहीं हो गई। इस प्रकार 13 तारीख को अमृतसर में सर्वाधिक दुःखद घटना घटी, जो जलियाँवाला बाग के हत्याकांड के नाम से प्रसिद्ध है। इस कांड के बाद भी सरकार ने दमन का रवैया बरकरार रखा। मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। आतंकराज के उस काल में बड़े पैमाने पर गोलीकांड हुए, फाँसिया दी गईं, हवाई जहाजों से बम बरसाये गये, लोगों को पेट के बल रेंगने के लिए मजबूर किया गया।

पंजाब में होने वाले इन अमानुषिक कार्यों की खबर जब भारत के अन्य भागों में पहुँची तो समस्त भारतीयों में असाधारण आक्रोश उत्पन्न हो गया। कोई भी स्वाभिमानी इन निर्मम अत्याचारों को आँख मूँद कर नहीं देख सकता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद से भारतीय सदस्य शंकरन नायर ने मार्शल लॉ के विरुद्ध त्याग पत्र दे दिया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी पंजाब की बर्बर घटनाओं से विक्षुब्ध होकर अपनी ''सर'' की उपाधि लौटा दी। इस घटना की जाँच हेतु गठित 'हंटर समिति' की कार्यवाही से सभी राष्ट्रवादी बहुत क्षुब्ध थे। गांधीजी ने देखा कि पूरा माहौल हिंसा की लपेट में है, तो उन्होंने आंदोलन वापस ले लिया।

सन 1919 ई0 में अमृतसर में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में देश की मनःस्थिति की झलक मिली। चितरंजनदास मांटफोर्ड सुधारों को स्वीकार करने के विरुद्ध थे लेकिन तिलक चाहते थे कि अनुक्रियात्मक सहयोग दिया जाए। अंत में एक समझौता हुआ और कांग्रेस इस बात के लिए तैयार हो गई कि सुधारों को इस तरह लागू किया जाए ताकि एक लोकप्रिय सरकार की शीघ्र स्थापना हो सके।

असहयोग आन्दोलन– इस वक्त गांधीजी धीरे–धीरे उस खिलाफत आंदोलन में खींचे जा रहे थे जिसके मंच से उन्हें शीघ्र ही सरकार से असहयोग करने की घोषणा करनी थी। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे, तभी से उनके मन में हिन्दू– मुस्लिम एकता को लेकर दिलचस्पी पैदा हो गई थी। उन्होंने अली बंधुओं से सम्पर्क स्थापित किया था और वे मानते थे कि खिलाफत की माँग न्यायोचित थी।

उनके लिए ''खिलाफत आंदोलन हिंदुओं और मुसलमानों को एकता में बाँधने का एक ऐसा सुअवसर था, जो सैंकड़ों वर्षों में नहीं आएगा।'' नवम्बर, 1919 में गांधीजी खिलाफत सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये। सम्मेलन ने मुसलमानों से कहा कि वे मित्र राष्ट्रों की विजय के उपलक्ष्य में आयोजित सार्वजनिक उत्सवों में भाग न लें। घोषणा की गई कि यदि ब्रिटेन ने तुर्की के साथ न्याय नहीं किया तो बहिष्कार और असहयोग शुरू होगा। अमृतसर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने आन्दोलन को समर्थन दिया। गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन करने का फैसला किया। असहयोग का यह कार्यक्रम 1 अगस्त, 1920 को शुरू किया गया।

इसकी सफलता के लिए कांग्रेस का सहयोग अनिवार्य था। गांधीजी की अपील ने नरमपंथी और उग्रपंथी दोनों ही वर्गों के नेताओं को आकर्षित किया था क्योंकि उन्होंने नरमपंथियों के साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज के लक्ष्य को उग्रपंथियों के असहयोग के माध्यम से प्राप्त करने के लक्ष्य से मिला दिया था। यहाँ तक कि क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने भी उन्हें एक अवसर देना चाहा।

अंहिसात्मक असहयोग की नयी योजना कांग्रेस ने सितम्बर, 1920 में कलकत्ता के अपने विशेष अधिवेशन में स्वीकार की। कलकत्ता अधिवेशन के प्रस्ताव में ऐलान किया गया कि ''महात्मा गाँधी ने जो उत्तरोत्तर बढ़ने वाला अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया है, वह तब तक जारी रहेगा जब तक कि उक्त अन्याय की बातों का निराकरण नहीं किया जाता और स्वराज नहीं कायम होता।'' असहयोग का यह आन्दोलन कई मंजिलों से होकर बढ़ना था। इसकी शुरूआत सरकार की दी हुई उपाधियों को त्यागने और

तीन तरह के बहिष्कार से होने वाला था। तीन तरह के बहिष्कार में धरना–सभाओं का, अदालतों तथा स्कूलों–कॉलेजों का बहिष्कार शामिल था। उसके साथ ही ''हर घर में फिर चरखा और करघा चालू करने'' की बात थी। आन्दोलन की अंतिम अवस्था में करबन्दी आरम्भ करने की योजना थी, पर यह निश्चित नहीं था कि यह समय कब आएगा। अदालतों में वकीलों ने काम का बहिष्कार किया। दिसम्बर, 1920 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नागपुर में हुआ। वहाँ लगभग एकमत से नया कार्यक्रम पास हो गया। इसके पहले कांग्रेस का लक्ष्य साम्राज्य के अन्दर रहते हुए औपनिवेशिक स्वशासन प्राप्त करना था। अब उसे बदलकर ''शांतिपूर्ण उपायों से स्वराज प्राप्त करना'' कांग्रेस का लक्ष्य बना दिया गया।

नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस संगठन को नया संविधान देकर उसके ढाँचे को व्यवस्थित किया। कांग्रेस को एक ठोस और प्रभावकारी राजनीतिक संगठन में बदल दिया गया जिसमें 15 सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति, 350 सदस्यों की एक अखिल भारतीय समिति और ऐसी प्रांतीय समितियों की व्यवस्था हुई जिनका सम्बन्ध जिलों से लेकर कस्बों, तहसीलों और गांवों तक हो गया। कार्यकारिणी समिति को ऐसा समन्वित आकार दिया जाना था जिसे बारहों महीने सक्रिय रहना था। आमतौर पर उसके फैसलों की समीक्षा करने और उसके निर्णयों को बदल देने तक के अधिकार थे। प्रांतीय समितियों का पुनः संगठन भाषायी आधार पर हुआ था। ये समितियाँ हर प्रदेश के लिए अलग–अलग थीं। इसी क्रम में गांव के ऊपर क्षेत्र, तहसील और फिर जिले के लिए भी इकाइयां बनती थी। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में शामिल होने वाले प्रतिनिधियों का चुनाव सदस्यता के आधार पर किया जाना था, यानि 50 हजार सदस्यों पर एक प्रतिनिधि। इस व्यवस्था से कांग्रेस प्रतिनिधि बहुल संस्था बन गई क्योंकि सदस्यता का वार्षिक चंदा केवल 25 पैसा था। अतः इसके सदस्यों की संख्या में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हुई। हालाँकि यह सदस्यता भी आवश्यक नहीं थी। सदस्यता के लिए कांग्रेस के लक्ष्यों और सिद्धान्तों की स्वीकृति पर्याप्त थी। इसकी वजह से यह दल भारत के लाखों–लाख गरीब लोगों तक पहुँच गया। आयु सीमा को घटाकर 18 वर्ष कर देने के बाद इसमें और तरुणाई आ गई। सन 1923 ई. तक ग्रामीण सदस्यों की संख्या शहरी क्षेत्रों के सदस्यों की संख्या से दुगुनी हो गई।

आधारभूत परिवर्तन न केवल दल की सामाजिक बनावट बल्कि उसके दृष्टिकोण और नीतियों में भी किया गया। सदस्यता अब केवल एक निष्क्रिय काम न होकर एक जीवंत प्रतिबद्धता बन गई थी। कांग्रेस राजनीतिक समाजीकरण का एक शस्त्र बन गई। इसने खादी, छुआछूत निवारण, मद्य निषेघ और राष्ट्रीय शिक्षा के काम हाथ में लिये। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग ने शिक्षितों और आम जनता के बीच की दीवार को तोड़ दिया। एक तिलक स्वराज कोष की स्थापना हुई जिसमें 6 महीनों के भीतर एक करोड़ से अधिक रूपये इकठ्ठा हो गये। इसके कारण संगठन वित्तीय मामलों में स्थिर हो गया। इस प्रकार जन समर्थन की नींव पर खड़े एक धर्मनिरपेक्ष दल ने गांधीजी के नेतृत्व में एक अद्‌भुत अस्त्र से साम्राज्यवादियों से संघर्ष करने का फैसला किया।

जल्द से जल्द स्वराज प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने का जो नया कार्यक्रम अपनाया, उससे जन– आंदोलन बड़ी तेजी से आगे बढ़ चला। गाँधीजी ने स्पष्ट शब्दों में यह भविष्यवाणी की थी कि स्वराज एक वर्ष के अन्दर मिल जाएगा। यहाँ तक कि उसके लिए उन्होंने एक तारीख भी निश्चित कर दी थी। 31 दिसम्बर, 1921 से पहले पहले स्वराज मिल जाने वाला था। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि सितम्बर, 1921 में गाँधीजी ने एक सम्मेलन में कह डाला कि ''साल खत्म होने के पहले–पहले स्वराज प्राप्त कर लेने का मुझे इतना पक्का विश्वास है कि बिना स्वराज लिये मैं 31 दिसम्बर के बाद जीवित रहने की कल्पना नहीं कर सकता।''

कांग्रेस के सभी उम्मीदवारों द्वारा चुनावों से अपने नाम वापस लेने के बाद वकीलों से अदालतों का और

जनता से शिक्षण सँस्थाओ, विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया। बहुत बड़ी संख्या में छात्रों ने अपने स्कूल कॉलेज छोड़ दिये, शिक्षकों ने त्यागपत्र दे दिये। जामिया मिलिया इस्लामिया और काशी, बिहार और गुजरात विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना हुई। आचार्य नरेन्द्र देव, राजेन्द्र प्रसाद, डा0 जाकिर हुसैन और सुभाषचन्द्र बोस ने इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में प्राध्यापन का कार्य किया। 30 सितम्बर, 1921 तक विदेशी कपड़ों के पूर्ण बहिष्कार का काम पूरा कर दिया जाना था। शताब्दी के पहले दशक में स्वदेशी आंदोलन के दौरान धरनों और सार्वजनिक स्थानों पर विदेशी वस्तुओं की होली जलाने की घटनाओं की पुनरावृत्ति होनी थी। छात्र समुदाय को स्वंयसेवकों के रूप में संगठित किया गया। उन्होंने राष्ट्रीय मसले के प्रचार, दान की रकम के एकत्रण, अंग्रेजों का साथ देने वाले के विरुद्ध प्रदर्शन, पंच निर्णयों वाली अदालतों का संचालन और विदेशी वस्तुएँ बेचने वाली दुकानों के सामने धरना देने के काम किये।

आंदोलन को वेल्स के राजकुमार के आगमन के बहिष्कार में असाधरण सफलता मिली। बम्बई में हड़ताल हुई और समुद्र तट पर एक सभा की गई जिसमें गांधीजी ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई लेकिन भीड़ अनुशासनहीन हो गई। पुलिस ने गोली चलाई। कलकत्ता में खिलाफत वालों और पुलिस के बीच के एक संघर्ष के अलावा हड़ताल पूरी तरह सफल रही।

सरकार बहुत संकट में आ गई थी और उसने दमनकारी कदम उठाने का फैसला किया। कांग्रेस और खिलाफत स्वंयसेवकों के संगठन को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। जनसभाओं और जुलूसों पर प्रतिबन्ध लग गया। यह संगठन और भाषण की स्वतंत्रता को एक चुनौती थी क्योंकि इसके बिना कोई भी राजनीतिक आंदोलन चल ही नहीं सकता था। चितरंजन दास ने चुनौती को स्वीकार करके आदेश की अवज्ञा करते हुए कहा ''मै महसूस करता हूँ कि मेरी कलाइयों में हथकड़ियाँ पड़ी है और मेरे शरीर पर लोहे की जंजीर का वजन है। पूरा देश ही एक लंबा–चौडा कारागार है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मै जीवित हूँ या मर गया हूँ। उनकी पत्नी और पुत्र की गिरफ्तारी के बाद हजारों कार्यकर्ताओं ने अपना नाम लिखाना शुरू किया।

सन 1921 ई0 के अंत तक गांधीजी को छोड़कर शेष सभी प्रमुख नेता जेल के सींखचों के भीतर थे। कार्यकारिणी ने हर प्रांत को कुछ खास शर्तों पर नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू करने की अनुमति दी थी लेकिन मोपला के विद्रोह और बम्बई के दंगों की वजह से गाँधी जी बेचैन हो उठे। वह धीरे–धीरे बढ़ना चाहते थे। उन्होंने आंदोलन को शहरों से, जहाँ अहिंसा असफल हो गई थी, हटाकर गाँवों में तेज करने का फैसला किया। अहमदाबाद कांग्रेस ने यह दृढ़ निश्चय प्रकट किया कि वह अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन को और भी जोर से चलाएगी और उस वक्त तक जारी रखेगी जब तक कि भारत सरकार की बागडोर जनता के हाथों में न आ जाए। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सारे अधिकार गाँधी जी को दे दिए गए। गांधीजी ने 1 फरवरी, 1922 को वाइसराय को अपनी प्रसिद्ध चुनौती दी। देश के सामने सिवाय इसके और कोई चारा नहीं है कि वह अपनी माँगों को पूरा कराने के लिए अहिंसा का कोई तरीका अपनाये।

घोषणा की गई कि गांधीजी गुजरात के बारदोली में इसकी आजमाइश करेंगे लेकिन इसके पहले कि बारदोली में नागरिक अवज्ञा का एक व्यापक जन आंदोलन शुरू किया जाता, 5 फरवरी को उत्तर प्रदेश में चोरी चौरा नामक जगह पर एक घटना घट गई। पुलिस के अंधाधुंध गोली चलाने के जवाब में कुछ किसानों ने पुलिस थाने में आग लगा दी जिससे 22 सिपाहियों की मृत्यु हो गई। बारदोली में शीघ्रता में कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई। गांधीजी के जोर देने पर 12 फरवरी को नागरिक अवज्ञा स्थगित करके एक रचनात्मक कार्यक्रम अपनाने पर सहमति हुई। बारदोली के फैसले से बहुत से राष्ट्रीय नेताओं को आघात लगा। सुभाष ने

उसे ''राष्ट्रीय आपदा'' कहा। गांधीजी को अपने अनुयायियों के बीच फैसलों का औचित्य सिद्ध करने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। उन्होंने नेहरू को यह विश्वास दिलाया कि ''यदि स्थगन न हुआ होता तो हम लोगों ने अनिवार्यतः अहिंसक के बजाय एक हिंसक आंदोलन का नेतृत्व किया होता। पीछे हट जाने के इस कदम से हमारा संघर्ष समृद्ध होगा। हम अपने लंगरस्थल पर वापस लौट आये हैं।''

10 मार्च, 1922 को गांधीजी को गिरफ्तार किया गया और उन पर राज्य के विरुद्ध द्वेष फैलाने का अभियोग लगाया गया। गांधीजी ने अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करने के सिलसिले में जो तर्क दिए, उनकी वजह से वह मुकदमा ऐतिहासिक हो गया क्योंकि उन्होंने स्वंय अभियोग स्वीकार कर लिया था। उन्होंने कहा ''न चाहते हुए भी मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि ब्रिटेन के संबंध ने भारत को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से इतना असहाय बना दिया जितना वह पहले कभी नहीं था। शहरों के रहने वाले नहीं जानते हैं कि किस तरह आधा पेट भोजन करने वाली जनता धीरे–धीरे मृत्यु के निकट पहुँच रही है। वे नहीं महसूस करते कि कानून द्वारा भारत में स्थापित ब्रितानी सरकार जनता का शोषण करने के लिए ही चल रही है। आँकड़े का कोई कुतर्क, कोई बाजीगरी इस प्रमाण को गलत सिद्ध नहीं कर सकती कि बहुत से गाँवों में नरकंकाल पड़े हुए हैं। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि प्रशासन से सम्बद्ध अंग्रेज या उनके भारतीय सहयोगी नहीं जानते कि उनसे यह अपराध कराया जा रहा है, जिसके बारे में मैंने बताने की कोशिश की है। मुझे विश्वास है कि बहुत से अंग्रेज और भारतीय अधिकारी ईमानदारीपूर्वक यह समझते हैं कि वे संसार की एक सर्वोत्कृष्ट प्रणाली को लागू कर रहे हैं और भारत सुस्थिर ढंग से लेकिन धीरे–धीरे प्रगति कर रहा है।

अपने वक्तव्य का समापन करते हुए उन्होंने कहा कि उनका विश्वास है कि बुराई से असहयोग करना वैसा ही फर्ज है जैसा अच्छाई से सहयोग। उन्होंने अदालत से माँग की कि कानून के अन्तर्गत जिसे जान–बूझ कर किया गया अपराध माना जाता है उसके लिए बड़ी से बड़ी जो भी सजा दी जा सकती हो, मुझे दी जाए। मुझे यही एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य लगता है।''

मुकदमे की सुनवायी करने वाले न्यायाधीश ने स्वीकार करते हुए कहा ''यह तथ्य है कि आप अपने देश के लाखों–लाख लोगों की निगाह में एक महान देशभक्त और नेता है लेकिन अदालत की निगाह में कानून तोड़ने और उसकी आत्मस्वीकृति करने वाले व्यक्ति गाँधी को 6 साल की जेल की सजा दी जाती है – वही सजा जो सन 1908 ई0 में लोकमान्य तिलक को दी गई थी।''

फिलहाल 12 फरवरी, 1922 को आन्दोलन में जो पड़ाव आया था वह अस्थायी साबित हुआ। मांटेग्यू और बरकेनहेड ने कहा था कि भारत दुनिया की सबसे शक्तिशाली सत्ता को चुनौती नहीं दे सकता और अगर चुनौती गई तो इसका उत्तर पूरी ताकत से दिया जाएगा। गाँधी ने आन्दोलन वापस लेने के बाद 23 फरवरी, 1922 को यंग इण्डिया में अपने लेख में इस चुनौती का उत्तर दिया कि अंग्रेजों को यह जान लेना चाहिए कि सन 1920 ई0 में छिड़ा संघर्ष अंतिम संघर्ष है, निर्णायक संघर्ष है, फैसला होकर रहेगा, चाहे एक महीना लग जाए या एक साल लग जाए। कई महीने लग जाएं या कई साल लग जाएं। अंग्रेजी हुकूमत चाहे उतना ही दमन करे जितना सन 1857 ई0 के विद्रोह के समय किया था, फैसला होकर रहेगा।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन – सन 1922 ई0 में जब असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया तो बहुत बड़े पैमाने पर निराशा फैली। जनता में पस्ती आ गई। सिद्धान्त, पार्टियाँ और राजनीति हर चीज टूटती बिखरती दिखाई देने लगी। राष्ट्रीय आन्दोलन की पस्ती के इस काल में साम्प्रदायिक झगड़ों की जहरीली हवा देश में चलने लगी। मुस्लिम लीग ने फिर अपने को कांग्रेस से अलग कर लिया। उसके जवाब में हिन्दू महासभा संकुचित और प्रतिक्रियावादी ढंग से प्रचार करने लगी। कांग्रेस के नेताओं के एक हिस्से ने जिसका प्रतिनिधित्व देशबन्धु चितंरजनदास और मोतीलाल नेहरू करते थे, बारदोली के फैसले के बाद एक नया मोड़

लेने की कोशिश की। इनका सुझाव था कि कांग्रेसी नेताओं को चुनाव लड़ कर विधान परिषदों में प्रवेश करना चाहिए और वहाँ पर अंग्रेजी सरकार के अलोकतांत्रिक और दमनकारी चरित्र का पर्दाफाश करना चाहिए। इन नेताओं ने कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन की माँग की थी इसलिए परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी नेताओं के आपस में मतभेद थे। परिवर्तनवादी नेताओं ने स्वराज पार्टी भी बना डाली लेकिन उन्होंने अपने मतभेदों से राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता पर कोई असर नहीं पड़ने दिया। दोनों कांग्रेस के भीतर ही रहे और अपनी–अपनी गतिविधियाँ करते हुए दोनों ने एक–दूसरे को यथासंभव सहयोग दिया। जब संघर्ष का समय आया तो दोनों एक बार फिर इकठ्ठे हो गये।

22 नवम्बर, 1927 को लंदन से ब्रितानी मंत्रिमण्डल ने घोषणा की कि नियत समय से 2 साल पहले ही एक शाही आयोग की नियुक्ति का निर्णय किया गया है जो यह समीक्षा करेगा कि भारत और अधिक सुधारों तथा संसदीय जनतंत्र के योग्य हुआ है या नहीं। आयोग के अध्यक्ष हुए एक अंग्रेज, सर जान साइमन और इस प्रकार आम तौर पर उसे साइमन आयोग की संज्ञा दी गई। उसके सातों सदस्य अंग्रेज थे।

सारे भारत में इसकी तत्काल और व्यापक प्रतिक्रिया हुई कि जिस आयोग को भारत का राजनीतिक भविष्य निश्चित करना हो, उसकी सदस्यता के लिए एक भी भारतीय को काबिल नहीं माना गया। यह भारत के लिए अपमानजनक बात थी कि इसमें कोई भी भारतीय नहीं था।

कांग्रेस के अन्दर एक नया गरम दल बन गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नया वामपक्ष प्रकट होने लगा। सन 1927 ई0 के अन्त में जवाहरलाल नेहरू डेढ़ साल तक यूरोप का दौरा करने के बाद भारत लौटे। उन्होंने यूरोप में समाजवादी क्षेत्रों और उनके विचारों से सम्पर्क कायम किया था। सन 1927 ई0 के आखिर में कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन हुआ। इसमें भी नई वामपंथी प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं और यह स्पष्ट हो गया कि खासकर नौजवानों में उनका बहुत असर हुआ है। मद्रास अधिवेशन ने सर्वसम्मति से जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत एवं सुभाषचन्द्र बोस द्वारा समर्थित एक प्रस्ताव पास किया जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित किया गया था। इसी अधिवेशन में साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय हुआ, साथ ही यह भी फैसला किया गया कि नये विधान की सरकारी योजना के मुकाबले में भारतीय योजना बनाने के लिए एक सर्वदलीय सम्मेलन हो और उसमें कांग्रेस भाग ले। कांग्रेस ने साम्राज्यवाद विरोधी लीग में शामिल होना स्वीकार किया। नेहरू और सुभाष बोस युवाओं के और कांग्रेस के अन्दर बढ़ती हुई वामपंथी प्रवृत्तियों के मुख्य नेता समझे जाते थे। वे कांग्रेस के सैक्रेटरी नियुक्त कर दिए गए।

3 जनवरी, 1928 को जैसे ही साइमन और उनके साथी मुम्बई में उतरे, कार्यवाही शुरू हो गई। उस दिन सभी प्रमुख नगरों तथा कस्बों में हड़ताल रही तथा लोगों ने सामूहिक प्रदर्शनों में हिस्सा लिया, काले झंडे दिखाए गए।

साइमन आयोग की नियुक्ति करने वाले अनुदारपंथी राज्य सचिव लार्ड बिरकेनहेड भी लगातार यह राग अलाप रहे थे कि भारतीय लोग संवैधानिक सुधार के लिए सर्वसम्मति से कोई ठोस प्रस्ताव बनाने में असमर्थ हैं, ऐसा प्रस्ताव जिसको सभी भारतीयों का व्यापक राजनीतिक समर्थन प्राप्त हो। इस चुनौती को भी स्वीकार किया गया और एक योजना को अंतिम रूप देने के लिए फरवरी, मई और अगस्त 1928 में सर्वदलीय अधिवेशन आयोजित किये गये। इसको मोतीलाल नेहरू के नाम पर नेहरू रिपोर्ट नाम से बाद में जाना गया। वही इस रिपोर्ट के प्रमुख लेखक थे। इसमें कहा गया कि भारतीय सरकार को 'डोमिनियन स्टेटस (अधिराज्य प्रस्थिति)'' की हैसियत रखने वाली सरकार होना चाहिए। इसमें साम्प्रदायिक आधार पर अलग निर्वाचक मण्डल की माँग को अस्वीकार किया गया था जिसके आधार पर इसमें पूर्व के संवैधानिक सुधार किए गए थे।

दिसम्बर, 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कराने में गांधीजी को

काफी दिक्कत हुई। उन्होंने जो प्रस्ताव बनाया था उसमें कहा गया था कि इस रिपोर्ट का मतलब यह नहीं है कि पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य छोड़ दिया गया है और अगर सरकार 31 दिसम्बर, 1929 तक यह रिपोर्ट मंजूर नहीं कर लेती है तो कांग्रेस एक बार फिर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन छेड़ेगी और इस बार इसे कर बन्दी से प्रारम्भ करेगी।

कांग्रेस का होने वाला अधिवेशन बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। आगामी वर्ष में संघर्ष छेड़ा जाने वाला था। इसलिए कांग्रेस का अध्यक्ष गांधीजी को चुना गया लेकिन उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया और अपनी जगह इण्डिपेन्डेंस लीग तथा युवकों के नेता जवाहरलाल नेहरू, जो समाजवाद से सहानुभूति प्रकट कर चुके थे नामजद कर दिया। उस समय अपनी पसन्द के हक में दलील देते हुए गांधीजी ने नेहरू के बारे में कहा कि देश प्रेम में कोई भी उनसे आगे नहीं बढ़ सकता। वह वीर और भावुक हैं और इस समय इन गुणों की बड़ी आवश्यकता है। लेकिन संघर्षों में दृढ़ता और भावुकता का परिचय देने के साथ–साथ उनमें एक राजनीतिज्ञ के विवेक से काम लेने की क्षमता भी है। वह अनुशासन प्रेमी है और अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर चुके हैं कि उनमें असहमत होते हुए भी फैसलों को मानने की क्षमता है। वह विन्रम स्वभाव के हैं और इतने व्यावहारिक भी हैं कि कभी हवा में नहीं उड़ते। उनके हाथों में देश बिल्कुल सुरक्षित है।

सन 1929 के आखिर में लाहौर अधिवेशन हुआ। यह ऐलान किया गया कि नेहरू रिपोर्ट का समय बीत गया है। आगे से कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वराज रहेगा जवाहरलाल नेहरू का अध्यक्षीय भाषण आन्दोलन के लिए हरकत में आने का प्रेरक आह्वान था। 'विदेशी शासन से अपने देश को मुक्त करने के लिए अब हमें आंदोलन करना है और साथियों आप लोग और देश के सभी लोग इसमें हाथ बँटाने के लिए सादर आमंत्रित है।' नेहरू ने यह बात साफ की कि मुक्ति का मतलब विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना भर नहीं है। मुझे साफ–साफ स्वीकार कर लेना चाहिए कि मैं एक समाजवादी हूँ, गणतन्त्रवादी हूँ।

आधी रात को जब पुराना साल खत्म हुआ और सन 1930 प्रारम्भ हुआ तो भारतीय स्वतंत्रता का तिरंगा झंडा फहराया गया। 26 जनवरी, 1930 को सारे देश में पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। हर जगह विराट प्रदर्शन और सभाएँ हुईं जिनमें पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रतिज्ञा की गई। जनता ने घोषणा की कि अंग्रेजी राज को अब और मानना मनुष्य और भगवान के प्रति पाप करना है और अपना विश्वास प्रकट किया कि ''यदि हम सरकार से स्वेच्छापूर्वक सहयोग करना और उसे कर देना बन्द कर दें और उकसाए जाने पर भी हिंसा न करें तो यह अमानुषिक राज अवश्य ही खत्म हो जाएगा।

कांग्रेस की कार्यकारिणी की सन 1929 ई0 में हुई लाहौर कांग्रेस में यह अधिकार गाँधी जी को दिया गया था कि वह देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ें। इस आन्दोलन में कर अदा न करना भी शामिल था। इसने विधानसभा के सदस्यों से विधायक पद से इस्तीफा देने का भी आह्वान किया था। सन 1930 ई0 के मध्य फरवरी में साबरमती आश्रम में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें गाँधी जी को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छा से जब और जिस जगह से चाहे सविनय अवज्ञा आन्दोलन का शुभारम्भ कर सकते है। 31 जनवरी, 1930 को गाँधी द्वारा प्रस्तुत 11 सूत्री न्यूनतम माँगों को वाइस राय लार्ड इरविन ने अस्वीकार कर दिया। इसलिए अब सिर्फ एक ही रास्ता बचा था – सविनय अवज्ञा का।

सविनय अवज्ञा अभियान का नेतृत्व कर गाँधी जी ने अपनी राजनीतिक कुशलता का अपूर्व परिचय दिया। उन्होंने इस आन्दोलन का प्रारम्भ नमक पर कर हटाने को लेकर डांडी यात्रा से किया। गुजरात के समुद्र तट पर स्थित ग्राम डांडी में गाँधी द्वारा नमक कानून को तोड़ने का उदाहरण देश में सर्वत्र अनुकरणीय बन गया। अपने निर्धारित स्थान को पहुँचने के लिए गांधीजी ने अपने साथियों के साथ पैदल 200 मील यात्रा की और 6 अप्रैल, 1930 को उन्होंने वहाँ नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा। इसका चामत्कारिक प्रभाव

पड़ा और देश के हजारों लोगों ने नमक –कानून की अवज्ञा कर नमक बनाना आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही यह एक महान आंदोलन बन गया। हजारों महिलाएँ घरों की चारदीवारियों से बाहर निकलकर शराब की दुकानों पर धरना देने लगीं। इसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। स्वदेशी वस्त्र को प्रोत्साहन देने हेतु विदेशी वस्त्र का बहिष्कार किया गया तथा उसकी सरे आम होली जलाई गई।

महात्मा गाँधी इस आन्दोलन के उक्त कार्यक्रमों को सीमाओं में ही रखना चाहते थे लेकिन यह शीघ्र ही इन सीमाओं को पार कर गया। इस समय विश्व में आर्थिक मंदी का दौर चल रहा था। भारत की आर्थिक अवस्था अत्यंत दयनीय हो गई थी। इस कारण भारत में बेरोजगारी का प्रकोप बढ़ रहा था। श्रमिकों ने हड़ताल करना आरम्भ कर दिया। विद्यार्थियों ने स्कूल व कॉलेज छोड़ कर आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया। किसानों ने कर देना बंद कर दिया। सरकार ने किसानों को जमीन से बेदखल करना आरम्भ कर दिया। जनता में आन्दोलन के लिए ज्यों–ज्यों उत्साह बढ़ रहा था उधर सरकार का दमन चक्र दिन पर दिन क्रूर होता जा रहा था। सरकार ने नये नये अध्यादेश जारी किये। प्रदर्शनकारियों पर डंडे बरसाये गये। गोलियों से सत्याग्रहियों को भूना गया। उनकी सम्पति सरकार ने जब्त कर ली। हजारों लोग जेलों में बंद कर दिए गए। उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पठानों ने खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किया।

सत्याग्रहियों पर ब्रिटिश सरकार के कठोर एवं क्रूर अत्याचारों से महात्मा गाँधी का दिल दहल गया। उन्होंने गर्वनर जनरल को इस आशय का एक पत्र लिखा परन्तु उसका कोई असर नहीं पड़ा। जब महात्मा गाँधी ने धारासणा के नमक कारखानों पर अधिकार करने की घोषणा की तो 5 मई, 1930 को उन्हें बंदी बना लिया गया। उनकी गिरफ्तारी की उग्र प्रतिक्रिया हुई। अधिकांश नगरों में हड़ताल रखी गई। बम्बई के 50000 मजदूर काम छोड़ कर सड़कों पर आ गये। मिल मजदूरों की हड़ताल की खबर फैलते ही रेलवे कारखाने के श्रमिक हड़ताल पर आ गये। बम्बई के औद्योगिक नगर शोलापुर में आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया।

सन 1930 ई0 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन इतना व्यापक तथा उग्र होगा इसका अनुमान ब्रिटिश सरकार भी नहीं लगा सकी थी। आन्दोलन के करबन्दी, लामबन्दी, शराबबन्दी, नमक–सत्याग्रह, गांजा–भांग और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, सरकारी स्कूल व कॉलेजों एवं अदालतों का बायकाट आदि कई रूप इस आन्दोलन ने धारण किये। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यह आन्दोलन आशातीत रूप से सफल रहा। जुलाई के प्रारम्भ तक भारत का कोई प्रांत ऐसा नहीं बचा था। जहाँ इस आंदोलन का असर न पड़ा हो। असहयोग आन्दोलन की तुलना में इस आन्दोलन को महिला वर्ग का अधिक सहयोग मिला। इस आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह रही कि इसमें किसानों ने अपना सक्रिय योगदान दिया। बिहार और गुजरात में किसान इस आन्दोलन में अग्रणी रहे।

इस व्यापक आन्दोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हर संभव उपाय किये पर वह असफल रही। इसी अन्तराल में गोलमेज सभा की योजनाएँ प्रगति करती गईं। ब्रिटिश सरकार गाँधी और कांग्रेस का सहयोग पाने को आतुर थी क्योंकि ब्रिटिश सरकार अब इस निष्कर्ष पर आ पहुँची थी कि बिना कांग्रेस के सहयोग के कोई संविधान संबधी योजना सफल नहीं हो सकती। अतः गवर्नर –जनरल ने तेज बहादुर सप्रु के माध्यम से गांधीजी के माध्यम से कांग्रेस के साथ समझौते के प्रयास आरम्भ किये।

गाँधी – इरविन समझौता – प्रथम गोलमेज सम्मेलन असफल हो गया। अतः इरविन ने गाँधीजी को 19 फरवरी 1931 को मिलने बुलाया। उनकी वार्ता 15 दिन तक चलती रही। इस वार्ता के परिणामस्वरूप कांग्रेस कार्य समिति पर लगाया गया प्रतिबंध उठा लिया गया। 26 फरवरी को गाँधीजी सहित समिति के सभी

सदस्य बिना शर्त रिहा कर दिये गये। 5 मार्च 1931 को गांधीजी और इरविन के मध्य एक समझौता हुआ।

समझौते के प्रावधान इस प्रकार थे–

1. ब्रिटिश सरकार ने सभी अध्यादेशों तथा अभियोगों को वापस ले लिया तथा हिंसात्मक गतिविधियों में लिप्त के अलावा सभी सत्याग्रही मुक्त कर दिए गए।
2. सत्याग्रहियों की जब्त सम्पति वापस लौटा दी गई।
3. महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया।
4. दूसरी गोलमेज सभा में कांग्रेस ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।
5. ब्रिटिश सरकार ने शराब की दुकानों व विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरने का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया।
6. समुद्र किनारे के समीप बसने वाले व्यक्तियों को बिना टैक्स दिए नमक बनाने की अनुमति दे दी गई।

उपर्युक्त प्रावधानों से ज्ञात होता है कि महात्मा गाँधी अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में बहुत हद तक सफल रहे परन्तु गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

द्वितीय गोलमेज सभा में गाँधी जी ने साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रशंसनीय प्रयास किये परन्तु साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कोई सफलता नहीं मिलने दी। अतः गांधीजी दिसम्बर 1931 में स्वदेश लौट आये और जून, 1932 में दूसरी गोलमेज सभा स्थगित कर दी गई। भारत लौटते हुए उन्होंने देखा कि उनके दिल्ली समझौते का स्पष्ट उल्लंघन हो रहा था। भारत के नये वाइसराय विलिंगडन ने अपना दमन–चक्र आरम्भ कर दिया। वाइसराय तथा भारत सचिव ने महात्मा गाँधी को पुनः बंदी बनाकर अपनी अनुदार नीति का परिचय दिया। वाइसराय ने कांग्रेस का दमन करने हेतु 4 जनवरी, 1932 को चार अध्यादेश और जारी कर दिए। प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलाना आम बात हो गई। सामूहिक जुर्माने किए गए। हजारों स्त्री पुरूष पुनः जेलों में ठूँस दिए गए। अतः सन, 1932 का आन्दोलन भी समस्त देश में फैल गया। इसमें आमतौर पर लोगों ने हिंसा का सहारा नहीं लिया। सरकार ने समझा था कि यह आन्दोलन 6 हफ्ते में समाप्त हो जायेगा। परन्तु वह कई महीनों तक चलता रहा। उधर अगस्त, 1932 में मैकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा कर दी। गांधीजी ने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर सूचना दी कि यदि दलित वर्गों के पृथक निर्वाचन को समाप्त नहीं किया गया तो वे 30 सितम्बर से आमरण अनशन आरम्भ कर देंगे। सरकार पर इसका कोई असर नहीं हुआ। परन्तु दलित वर्ग के नेता डा0 अम्बेडकर ने दलित वर्ग के पृथक निर्वाचन को वापिस कराने का वायदा कर गांधीजी का अनशन तुड़वाया। यह सन 1932 ई0 का पूना पैक्ट कहलाता है। 8 मई, 1933 को उन्होंने पुनः 21 दिन का अनशन किया। वाइसराय से उन्होंने पुनः मिलने का प्रयास किया परन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि पहले आन्दोलन समाप्त करो। इस पर गाँधी जी ने जुलाई,

1933 में सामूहिक आन्दोलन समाप्त कर व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की घोषणा की। इसके साथ ही कांग्रेस की समस्त संघर्ष समितियाँ समाप्त कर दी गई। इस पर भी अगस्त, 1933 में गांधीजी को पुनः बंदी बना लिया गया। अनशन करने पर जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो सरकार ने 23 अगस्त को उन्हें बिना शर्त के रिहा कर दिया। मई, 1934 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में आन्दोलन बिना शर्त के वापिस ले लिया गया। जून, 1934 में कांग्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की उपलब्धियों को नहीं नकारा जा सकता। इस आन्दोलन से कुछ स्थायी लाभ भी हुए। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों ने प्रथम बार सामूहिक आन्दोलन में खुल कर भाग लिया। इस आन्दोलन के पीछे जनसाधारण ने अपनी अपूर्व श्रद्धा व निष्ठा का प्रदर्शन किया। केसफोर्ड ने इसकी उपलब्धियों के संदर्भ में लिखा है ''गाँधीजी ने एक सौम्य तथा निष्क्रिय राष्ट्र को शताब्दियों की निद्रा से जगा दिया था।''

भारत छोड़ो आन्दोलन –

भारतीय इतिहास में 1942 ई0 का भारत छोड़ो आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस कांति ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला दी और यह सिद्व कर दिया कि भारत पर अब अधिक समय तक ब्रिटिश आधिपत्य नहीं रहेगा। भारतीय अपनी स्वतत्रंता के लिए मर मिटने के लिए तैयार है।

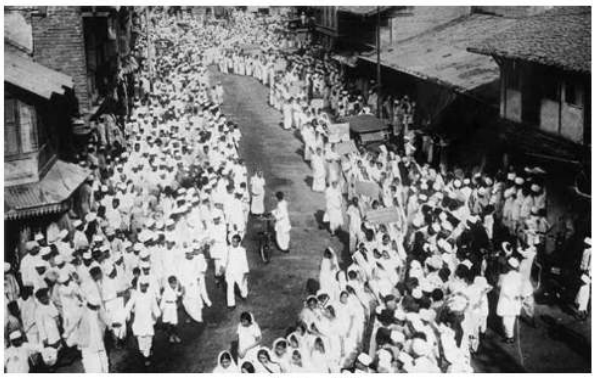

भारत छोड़ो आंदोलन

भारत छोड़ो आंदोलन के कारण–

(i) 1942 में क्रिप्स योजना की असफलता के बाद भारतीय यह समझने लगे कि ब्रिटिश सरकार ने स्वतंत्रता का अध्याय बंद कर दिया और सरकार ने कठोर दमनकारी नीति अपनाई थी। इससे देश में नैराश्य और उत्साह–हीनता छा गई थी। इस स्थिति में कांग्रेस के समक्ष आंदोलन चलाने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था।

(ii) ब्रिटिश सरकार प्रारम्भ में द्वितीय विश्व युद्ध में जापान का मुकाबला सफलतापूर्वक नहीं कर सकी। मलाया, सिंगापुर, बर्मा आदि देशों में ब्रिटिश फौजों को पीछे हटना पड़ा, जिससे भारतीयों को विश्वास हो गया कि ब्रिटेन भारत की रक्षा नहीं कर सकता। यदि इंग्लैण्ड भारत को आजाद कर देता है तो जापान भारत पर आक्रमण नहीं करेगा।

(iii) युद्ध के नाम पर सरकार देश में साम्राज्यवाद का नाटक खेल रही थी। देश में भ्रष्टाचार और चोरबाजारी का बोलबाला था। इससे जनता में विदेशी सरकार के प्रति असंतोष फैला हुआ था। 27 जुलाई को ब्रिटिश सरकार ने लंदन से एक घोषणा की कि भारत को युद्ध का अड्डा बनाया जाएगा और उसके लिए आवश्यक कार्यवाही की जाएगी। भारतीय नेता इससे बहुत क्षुब्ध हुए और इस घोषणा के लगभग बारह दिनों के बाद भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ।

कांग्रेस कार्य–समिति की वर्धा में 14 जुलाई, 1942 को बैठक हुई, जिसमें वर्धा प्रस्ताव द्वारा यह माँग की गई कि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँ। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसका समाधान केवल ब्रिटिश शासन का अंत होने से ही होगा। प्रस्ताव में बताया गया था कि इस उद्देश्य

की पूर्ति के लिए कांग्रेस एक व्यापक आंदोलन चलाएगी। 01 अगस्त, 1942 को इलाहबाद में तिलक दिवस के अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में कहा था, ''हम आग से खेलने जा रहे हैं, हम दुधारी तलवार प्रयुक्त करने जा रहे हैं, जिसकी चोट उलटे हमारे ऊपर भी पड़ सकती है, लेकिन हम विवश हैं।''

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक 07 और 08 अगस्त, 1942 को बंबई में हुई, जिसमें भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव पारित होने के बाद महात्मा गाँधी ने भाषण दिया। उन्होंने कहा, ''भारत में ब्रिटिश शासकों का रहना जापान को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रण देना है। उनके भारत छोड़ने से यह आक्रमण हट जाएगा। भारत को ईश्वर के हाथों में छोड़ दो अथवा अराजकता पर भारत को छोड़ दो। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था, ''मैं स्वतंत्रता का ज्यादा इंतजार नहीं कर सकता। मैं जिन्ना के हृदय–परिवर्तन की बाट नहीं देख सकता। .....यह मेरे जीवन का अंतिम संघर्ष है। '' महात्मा गाँधी ने कहा 'मैं आपको एक मंत्र दे रहा हूँ 'करो या मरो'। या तो हम इस प्रयास में देश को आजाद करवा लेगें या इस कार्य में हम मर मिटेगें।'

ब्रिटिश सरकार कार्यवाही के लिए तैयार थी। 08 अगस्त, 1942 की रात को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ था। सरकार ने शीघ्र ही नेताओं को गिरफ्तारी शुरू कर दी। 09 अगस्त को महात्मा गाँधी के साथ–साथ सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। महात्मा गाँधी को पूना के आगा खाँ पैलेस में नजरबंद रखा गया और अन्य नेताओं को अहमदनगर के किले में। नेताओं की गिरफ्तारी की बात गुप्त रखने की चेष्टा की गई, परंतु सरकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी। नेताओं की गिरफ्तारी की समाचार सारे देश में हवा की गति से फैल गया। सरकार ने कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर दिया और कांग्रेस कार्यालयों पर पुलिस का पहरा बैठा दिया।

राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से देश में आंदोलन शुरू हो गया। सरकार–विरोधी प्रदर्शन हुए, हड़तालें हुईं, सभाएँ हुई और जुलूस निकले। सरकार ने कठोर दमन–नीति अपनाई तथा घुड़सवारों और बंदूकों द्वारा उन्हें बंद करना प्रारंभ कर दिया गया। सारे देश में आतंक छा गया था। कोई भी ऐसा नेता जेल से बाहर नहीं था जो इस विषम स्थिति में जनता का मार्गदर्शन करता। सरकार के प्रति घृणा और रोष से उत्तेजित जनता ने हिंसात्मक मार्ग अपनाया। जमशेदपुर, अहमदाबाद और बंबई में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। स्कूल और कॉलेज बंद हो गए। ऐसा प्रतीत होने लगा कि देश के कई भागों में उत्तरप्रदेश में बलिया, बंगाल में मिदनापुर में स्थित तामलुक तथा महाराष्ट्र के सतारा में समानांतर सरकारों का गठन किया गया। कई जगह जेलों पर भी आक्रमण हुए और अनेक कैदी जेल से निकलकर भाग गए। जयप्रकाश नारायण, अरुणा आसफ अली, राममनोहर लोहिया आदि नेताओं ने भूमिगत रहते हुए इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्रिटिश सरकार ने क्रांति के दमन के लिए जनता को मशीनगनों और गोलियों का शिकार बनाया। आतंक फैलाने के लिए पुलिस ने निर्मम कार्य किया। तपती धूप में खड़ा कर लोगों पर गोली चला देना, उन्हें नंगा कर पेड़ों से उलटा टाँग देना और कोड़े मारना जैसे दण्ड पुलिस ने जनता को आंतकित करने के लिए अपनाए। पुलिस एवं सैनिकों की गोली से हजारों व्यक्तियों की जानें गईं। सैकड़ों–हजारों स्त्री–पुरूषों को कोड़ों से पीटा गया। सचमुच ब्रिटिश अधिकारियों का दमनचक्र अपने अंतिम बिंदु पर पहुँच गया था। पटना सचिवालय पर राष्ट्रीय झंडा फहराते समय सात छात्र गोली के शिकार हुए। इस प्रकार, सरकार की दमनकारी नीति पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। इतना ही नहीं, देश के कुछ हिस्सों में अप्राकृतिक अकाल उत्पन्न कर दिया गया।

सरकार के दमन चक्र तथा जनता के हिंसात्मक कार्यों से अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी क्षुब्ध हुए। उन्होंने 10 फरवरी, 1943 को इक्कीस दिनों का अनशन शुरू किया। सरकार ने इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ली। वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद के कई भारतीयों ने त्यागपत्र दे दिया और सरकार से अपील की

कि वह गांधीजी को जेल से मुक्त कर दे। परंतु, इसका परिणाम कुछ नहीं निकला। 02 मार्च, 1943 को महात्माजी का अनशन सकुशल समाप्त हुआ। अप्रैल, 1944 में गांधीजी बीमार पड़ गए और सरकार ने विवश होकर 06 मई, 1944 को गांधीजी को जेल से छोड़ दिया।

सन 1942 ई0 की अगस्त क्रांति भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। यह सही है कि यह आंदोलन सफल नहीं हो सका। किंतु, इससे क्रांति का महत्त्व कम नहीं होता है। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि अब अधिक दिनों तक भारत में ब्रिटिश शासन कायम नहीं रह सकता। सरकार को यह पता चल गया कि भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक असंतोष है। इस प्रकार, 1942 ई0 की क्रांति ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए समुचित पृष्ठभूमि तैयार कर दी। क्रांति में भारतीय जनता ने अपूर्व साहस और धैर्य का परिचय दिया। लाखों युवक क्रांति में मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए शहीद होने को तैयार हो गए। इससे स्पष्ट हो गया था कि राष्ट्रीयता की भावना अपनी चरम सीमा पर है और ऐसी स्थिति में अंग्रेजों का कायम रहना संदिग्ध था।

आजाद हिंद फौज–सुभाष चन्द्र बोस 1940 ई0 के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता में अपने घर पर कड़ी निगरानी में नजरबंद रखे गए। किंतु, वे जनवरी, 1941 को भारत से बाहर चले गए और भारत की स्वाधीनता के लिए उन्होंने जर्मनी और जापान की यात्रा कर उन देशों की सहायता लेने का प्रयास किया। सिंगापुर पर जापान का अधिकार हो गया था। वहाँ अंग्रेज सेना के बहुत–से भारतीय सैनिक जापान द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए थे। नेताजी ने उन सैनिकों को सुसंगठित कर आजाद हिंद फौज का गठन किया और अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत सफलता प्राप्त की जो आगे बढ़ती हुई इम्फाल तक पहुँच गई। किंतु अंत में जापान की पराजय के साथ इसकी भी पराजय हो गई। नेताजी की मृत्यु हो गई। आजाद हिंद फौज के अफसर शाहनवाज, ढिल्लन, सहगल आदि गिरफ्तार हो गए और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। किंतु, जनमत के दबाव के कारण सरकार को उन्हें रिहा करना पड़ा।

नेहरु एवं सुभाष चन्द्र बोस

नौसैनिकों का विद्रोह–1946 ई0 में एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी। अपनी विभिन्न माँगों को लेकर भारतीय नौसैनिकों ने बम्बई, कराची, मद्रास आदि स्थानों पर विद्रोह किया। सबसे महत्त्वपूर्ण था बंबई में नौसैनिकों का विद्रोह। सरकार से उनकी माँगों की पूर्ति के लिए निवेदन किया गया और सार्वजनिक सभाओं का भी आयोजन किया गया। इन सैनिक विद्रोहों ने ब्रिटिश शासकों को आतंकित कर दिया। इससे विदेशी राष्ट्रों की नजर में भी अंग्रेज गिर गए तथा अंग्रेज यह समझ गये कि अब लम्बे समय तक भारतीय सैनिकों का सत्ता में बने रहने के लिए सहयोग प्राप्त नहीं होगा।

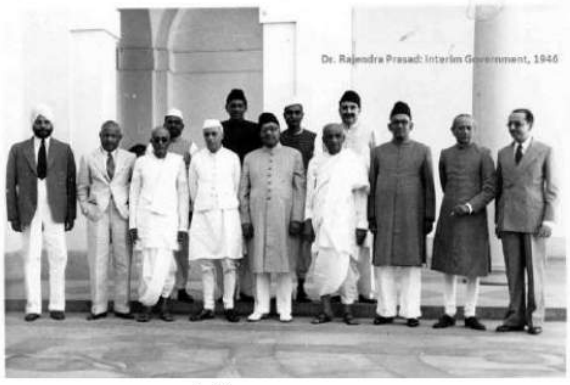

अंतरिम सरकार–1946

राष्ट्रीय आन्दोलन के इस दौर में मजदूर और किसान खुले तौर पर राजनीतिक और आर्थिक मसलों पर विरोध प्रदर्शन करने लगे थे। इनमे तेभागा आन्दोलन, वार्लिस विद्रोह, तेलंगाना संघर्ष, पुन्नप्रव्यालार विद्रोह, हैदराबाद किसान आन्दोलन, पंजाब के किसान मोर्चे और जगह–जगह होने वाली हड़तालें शामिल थीं।

Indian Express

INDIA CELEBRATES FREEDOM

Consambly Takes Over Governance

HISTORIC MIDNIGHT SESSION

Memorable Scenes In Madras

National Flag Over Fort

MOUNTBATTEN ASKS TO BE RELIEVED IN APRIL

Confident of India's Destiny

भारत में हो रहे आन्दोलनों के फलस्वरूप ब्रिटिश सत्ता को यह बात समझ आ गयी कि यहाँ उसकी सत्ता पुराने ढंग से ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकती। इस दौर में कांग्रेस की मांग थी "भारत छोडो" और ब्रिटिश सरकार ने निर्णय लिया कि मार्च 46 में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा जाये। मिशन का उद्देश्य सत्ता हस्तान्तरण का स्वरुप उसकी कार्यप्रणाली का प्रबंध करना था।

सितम्बर 46 में मुस्लिम लीग की मंजूरी के बिना अंतरिम सरकार बनी और नेहरु को उसका प्रधान नियुक्त किया गया पर जिन्ना ने कांग्रेस और ब्रिटिश शासन के खिलाफ पूरा जोर लगा दिया। कांग्रेस का मानना था कि विभाजन अगर ज़रूरी है तो आज़ादी के बाद उसका फैसला होना चाहिये। जबकि जिन्ना की जिद थी पहले विभाजन फिर आज़ादी। लीग ने कैबिनेट मिशन को अस्वीकार कर दिया इस अस्वीकृति का प्रमाण 16 अगस्त 1946 की सीधी कार्रवाही में दिखाई दिया जिसमे लगभग 5000 लोग मारे गये और आज़ादी का आन्दोलन रक्त रंजित हो गया। इसके बाद लीग ने संविधान सभा में भी शामिल होने से इंकार कर दिया। 1946 के चुनाव में भी लीग ने मुस्लिम सीटों का ध्रुवीकरण कर लिया। कलकत्ता, रावलपिंडी और नोआखाली में दंगे फूट पड़े। और अंततः भारत की आज़ादी लीग के सांप्रदायिक और हिंसक रवैये के कारण विभाजन में बदल गयी और माउंटबेटन योजना के अनुसार भारत के विभाजन कर दिया गया।

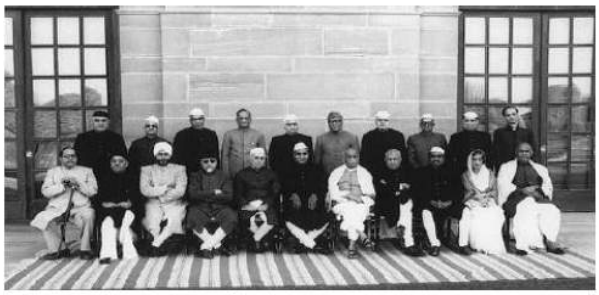
आजादी के बाद पहला मंत्रिमण्डल

महात्मा गाँधी के विचार

महात्मा गाँधी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे मूलतः कर्मण्यतावादी थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उनकी उल्लेखनीय भूमिका रही है। वे विचारक, नेता, तथा समाज–सुधारक ही नहीं बल्कि राजनीतिक–चिन्तन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय राजनीतिक कर्मशील चिन्तक थे। दक्षिण अफ्रीका से प्रारंभ हुआ इनका सत्याग्रही व्यक्तित्व भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान पूर्णतः निखरा। वे सत्याग्रह, सविनय–अवज्ञा एवम् भारत छोड़ो–आन्दोलन जैसे मौलिक आन्दोलनों के प्रेरणा रहे। गाँधी जी के करिश्माई व्यक्तित्व तथा उनके विचारों का न केवल भारत बल्कि विश्व स्तर पर व्यापक प्रभाव पडा। उनके विचार मूलतः प्रयोगात्मक स्वरूप में उभरे।

महात्मा गाँधी ने अपने चिन्तन में भारतीय मूल्यों को प्रस्तुत किया जिसमें पवित्रता, नैतिकता एवं

आध्यात्मिकता का प्राधान्य था। संघर्ष एवं छल–कपट की राजनीति के स्थान पर उन्होंने सत्य, अहिंसा, सहयोग, सेवा, लोक–कल्याण तथा प्रेम को अपने विचार दर्शन का आधार बनाया। गाधी जी ने राजनीति में शक्ति की अपेक्षा सदाशयता, नैतिकता एवं ह्रदय परिवर्तन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। संसार की पीड़ित मानव–जाति को उनकी सबसे बड़ी देन है अहिंसा का महत्त्वपूर्ण शस्त्र, यह बुराई से लडने का एक बेजोड़ तरीका है जिसे उन्होंने प्रचलित और कार्यान्वित किया। गाँधी जी ने यह प्रेरणा दी कि बिना हथियार के भी शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से सफलता के साथ लड़ा जा सकता है। गाँधी जी ने अपने विचारों को अन्तिम सत्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण गतिविधियों को 'सत्य के लिए खोज' बताया। उन्होंने लिखा है कि मै अपने पीछे कोई वाद नहीं छोड़ना चाहता, मेरे जो विचार आज हैं मै उन्हे कल बदल भी सकता हूँ, मेरे पास सिखाने के लिए नया कुछ नहीं है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने है जितनी पहाड़ियाँ।

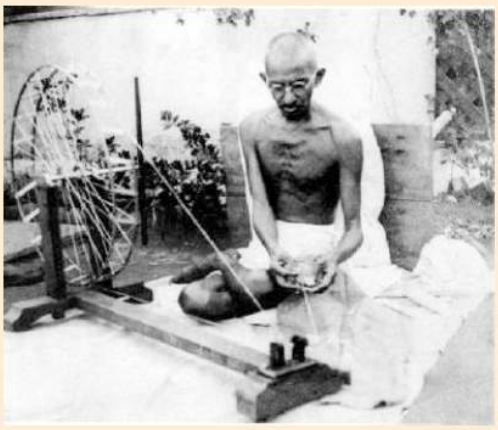

गाँधी–चिन्तन पर प्रभाव

गाँधी जी को धार्मिकता अपने परिवार तथा वैष्णव पृष्ठभूमि अपनी माता से प्राप्त हुई थी। उन्होंने वेद, पुराण उपनिषद्, गीता, वेदान्त रामायण आदि धर्म–ग्रंथो से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने 'राम' को ऐतिहासिक पुरूष तथा अनादि ईश्वर दोनों रूपों मे देखा। उन पर सूरदास, तुलसीदास, मीरा नरसी–मेहता आदि सन्तों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु वे ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के प्रभाव से भी अछूते नहीं रहे। उनकी अपनी धारणा यह थी कि भगवान की कृपा से ही मुक्ति अथवा आत्म–साक्षात्कार सम्भव है। वे ईश्वरीय कृपा को प्राप्त करना आवश्यक मानते थे। वे साकार एवं सगुण ईश्वर में आस्था नहीं रखते हुए भी अवतारवाद में विश्वास रखते थे। उन्हें अद्वैतवादी विचारधारा स्वीकार्य थी फिर भी ईश्वर को सृष्टि का रचयिता मानते थे। वे अपने इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान शिक्षा–ग्रहण के समय पाश्चात्य–चिन्तन से अधिक प्रभावित हुए। इनके अतिरिक्त उन पर रस्किन की 'अनु टू दिस लास्ट', थोरो की' आन सिविल डिस–ओबिडियेन्स तथा टॉलस्टॉय की 'किंगडम आफ गाड इज विदिन यू' आदि का गहरा प्रभाव पड़ा। वे इमर्सन से भी अत्यधिक प्रभावित थे।

ईश्वर, सत्य एवं अहिंसा

सत्य गाँधी जी के चिन्तन का प्रभुख आधार स्तम्भ है और ईश्वर सत्य का पर्याय। गाँधी जी के लिए सत्य एवं ईश्वर और ईश्वर एवं सत्य एक–दूसरे के ऊपर परस्पर निर्भर करते हैं। गाँधी जी के अनुसार सत्य के द्वारा ही ईश्वर का अनुभव हो सकता है। जब कभी कोई सच्ची बात कही जाती है, जब कभी कोई सच्ची भावना अनुभूत होती है, तब हम ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते है। वह है क्योंकि वह सत्य है। गाँधी जी के लिए सत्य एवं ईश्वर समरूप है। गाँधी जी का ईश्वर पर अटूट विश्वास था। गाँधी जी की ईश्वर के प्रति आस्था, उनके परिवार की वैष्णव साधना एवं उपासना का फल थी। उनके द्वारा ईश्वर में दृढ़ आस्था का भाव वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव में जाग्रत हुआ। उन्होंने

'रामनाम की अलख जगाई। उनके राम ऐतिहासिक पुरूष न होकर नित्य, अनादि एवं अद्वितीय ईश्वर थे। उनके अनुसार ईश्वर के प्रति समर्पित भाव रखे बिना पूर्णता की प्राप्ति नहीं की जा सकती। गाँधी–दर्शन की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि सत्य व ईश्वर एक है,सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है। जैसा कि उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में कहा, ''सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया, और सत्य का सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना अधूरा है। उनके अनुसार ईश्वर की प्राप्ति अहिंसा के द्वारा की जा सकती है। अहिंसा के बिना सत्य खोजना एवं पाना सम्भव नहीं है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे से इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक करना व्यवहारतः असम्भव है। वे एक सिक्के के दो पहलू हैं।

''स्वदेशी'' विषयक गाँधीय अवधारणा

गाँधी जी ने 'स्वदेशी' की अवधारणा को अति व्यापक अर्थ प्रदान किया है। यह अवधारणा केवल आर्थिक क्षेत्र में स्वदेश–निर्मित वस्तुओं के प्रयोग मात्र तक सीमित नहीं है। गाँधी जी ने स्वदेशी को स्वराज की पूर्व आवश्यकता बताया है और उन्होंने 'स्वशासन' एवं 'आत्मनिर्भता', 'राष्ट्रीय सरकार' तथा 'राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता' को परस्पर जोडने वाली कडी की संज्ञा दी है। उनके अनुसार 'स्वदेशी' हमारे अन्दर निहित वह भावना है जो हमें अधिक दूरस्थ से हटाकर अपने निकट के वातावरण के लाभ एवं उपयोग उठाने तक सीमित रखती है। ''मैं स्वदेशी को सभी के द्वारा पालन किये जाने वाला धार्मिक सिद्धान्त मानता हूँ।'' इस तरह से 'स्वदेशी' एक उच्चस्थ आध्यात्मिक प्रकार की सर्वतोमुखी देशभक्ति है। इसका अर्थ यह है कि हमें दूसरे की तुलना में अपनी मातृभूमि की सेवा करनी चाहिए तथा अपने देश के भीतर सुदूर स्थानों की अपेक्षा अपने तात्कालिक पडौसी की सेवा करनी चाहिए। 'स्वदेशी' की माँग है कि हम अपने देश के आदर्शो एवं संस्थाओं से दृढ़तापूर्वक जुड़े रहें।

गाँधी जी के सर्वोदय सम्बन्धी विचार

गाँधी जी की 'सर्वोदय' सम्बन्धी अवधारणा उनके विचार–दर्शन का सार है। उनका प्रमुख विचार–केन्द्र सम्पूर्ण समाज का उदय एवं विकास है जिसकी परिकल्पना उन्होंने अपने सर्वोदय सम्बन्धी विचारों में अभिवयक्त की है। गाँधी जी का मानना है कि 'सर्वोदय' एक जीवन–दर्शन, एक जीवन–पद्धति तथा एक नये समाज की रचना की दिशा में किया जाने वाला स्तुत्य प्रयास है। चूँकि गाँधी जी साध्य एवं साधनों की एकता में विश्वास करते थे, अतः उनके लिए सर्वोदय एक साधन भी है और साथ ही साध्य भी। गाँधी जी के अनुसार' सर्वोदय' प्रत्येक मानव एवं समाज का परम लक्ष्य है। अतः उस तक पहुँचना सबका परम कर्त्तव्य है। उनका मानना है कि सर्वोदय के मार्ग में पहाड़ भी आ सकते हैं वेगवती नदियाँ भी रास्ते में बाधा–स्वरूप आ सकती हैं और बड़े–बड़े खड्डे, खाईयाँ आदि भी आ सकती हैं, किन्तु इन बाधाओं के होते हुए भी हमें अपने परम–लक्ष्य की ओर जाने से कोई नहीं रोक सकता। इसी इच्छा–शक्ति के आधार पर हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

गाँधी जी के ''सर्वोदय'' सम्बन्धी विचार रस्किन के विचारों से प्रभावित थे। जोहान्सबर्ग से डरबन की रेल यात्रा के समय गाँधी जी के मित्र पोलक ने उन्हें रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' पढ़ने को दी। इस पुस्तक ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। पुस्तक पढ़ने के बाद उन्होंन निश्चय किया कि वे अपने जीवन को इस पुस्तक के आदर्शो के अनुरूप डालने का प्रयास करेंगे। उन्होंने इस पुस्तक का गुजराती भाषा में अनुवाद किया और उसका नाम 'सर्वोदय' रखा।

गाँधी जी के सर्वोदय सिद्धात का अर्थ –

1. एक व्यक्ति की भलाई में ही सब ही भलाई निहित है।
2. इस अवधारणा से तात्पर्य है समाज के समाज के अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई के स्थान पर सम्पूर्ण लोगों की सम्पूर्ण भलाई, कल्याण एवं विकास।
3. गाँधी जी के अनुसार वकील और नाई दोनों के कार्य की कीमत एक सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
4. मेहनत–मजदूरी कर किसान का सादा जीवन ही सच्चा जीवन है।

गाँधी जी 'सर्वोदय' विचार के अन्तर्गत बिना किसी भेद–भाव के सभी के विकास की कामना करते है। वे अधिक से अधिक लोगों की भलाई के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते क्योंकि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुसंख्यकों के हितों के लिए अल्पसंख्यकों के हितों की उपेक्षा की जा सकती है।

चरखा सम्बन्धी विचार

गाँधी जी के अनुसार चरखा भारतीयता व जन–आकाक्षाओं का प्रतीक है। यह असहायों को सहारा प्रदान कर उनका गौरव बढ़ाता है। चरखा आत्मविश्वास, आत्मसंयम तथा आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाता है। चरखा एक शान्त किन्तु निश्चित क्रान्ति को लाने वाला है। चरखा व्यापारिक युद्ध का प्रतीक न होकर व्याापारिक शान्ति का प्रतीक है। यह सभी को स्वावलम्बन का सन्देश देता है। गाँधी जी का मानना है कि चरखे की सहायता से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरूद्धार में बहुत सहायता मिलेगी।

स्वदेशी की प्रमुख प्रतीक खादी

स्वदेशी की इस व्यापक धारणा को स्वयं गाँधी जी ने प्रतीकात्मक रूप से आम जनता को समझाने के लिए 'खादी' का रूप दिया। खादी का सन्देश वे स्वयं नियमित रूप से चरखा चलाकर देते रहते थे तथा उनके सभी आश्रमवासियों एवम् अनुयायियों को नियमित रूप से चरखा चलाने के लिए कहते थे। किन्तु आम जनता, स्वयं उनके अधिकांश अनुयायी भी स्वदेशी की व्यापक धारणा को भूल गये और उसे खादी का पर्याय ही बना दिया। गाँधी जी के लिए चरखे का संगीत 'आत्मा की आवाज था। उनके लिए खादी आर्थिक स्वाधीनता, समानता एवं स्वाभिमान का प्रतीक थी। उन्होंने खादी को भारतीय एकता का प्रतीक बना दिया और उसे खद्दर के रूप में पहनाकर सबको राष्ट्रीय वेशभूषा से सुसज्जित कर दिया। वे कृषि एवं खादी–निर्माण को मानव कें 'दो फेफड़ों की तरह मानते थे। उनकी दृष्टि में खादी में हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने की तथा अस्पृश्यता निवारण की क्षमता थी।

ट्रस्टीशिप सम्बन्धी विचार

ट्रस्टीशिप या न्यासिता की अवधारणा गांधीवादी आर्थिक व्यवस्था की प्रमुख इकाई जिसका आधार अहिंसा, स्वराज और समता है। गाँधी जी का मत है कि समाज अहिंसा पर आधारित है। गाँधी जी का वास्तवित उद्देश्य ऐसी अर्थ–व्यवस्था का निर्माण करना है जो शोषणरहित हो। उनके ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में आत्मनिर्भरता, परोपकारिता, उत्पादन करने वाली इकाई की स्वायत्तता का होना अनिवार्य है। अहिंसा समान–वितरण और न्यासिता एक–दूसरे पर आधारित हैं। गाँधी जी के अनुसार न्यासिता ऐसा साधन है जो अहिंसात्मक है तथा जिसके माध्यम से आर्थिक परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके मूल में यह भावना काम करती है कि धनवान व्यक्तियों द्वारा अपनी अतिरिक्त

सम्पत्ति के लिए संरक्षता की भावना रहनी चाहिये और पडोसियों की तुलना में उसे एक रूपया भी ज्यादा नहीं रखना चाहिये। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप की अवधारणा को अत्यन्त गतिशील माना है। गाँधी जी के अनुसार अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी को अन्न और वस्त्र की अभाव न हो। प्रत्येक को इतना काम अवश्य मिलना चाहिए कि वह खाने और पहनने की आवश्यकता की पूर्ति कर सके।

सत्याग्रह

सत्याग्रह का अर्थ है– सत्य के प्रति आग्रह अर्थात आत्मशक्ति, प्रेम, भक्ति और सत्य–शक्ति का आग्रह। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो सामाजिक तथा राजनीतिक संघर्ष के प्रति गांधीवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। सत्याग्रह केवल सामूहिक संघर्ष और प्रतिकार की पद्धति नहीं है। यह व्यक्तिगत और घरेलू संघर्ष को भी आत्मसंयम द्वारा सामाधान प्रस्तुत करता है। 'सत्याग्रह' शब्द केवल संघर्ष और प्रतिकार का ही सूचक नहीं है बल्कि रचनात्मक कार्यो का भी सूचक है। 'सत्याग्रह' अहिसा का मार्ग है तथा सत्याग्रह में अनुकूल परिस्थिति रहने पर भी बल प्रयोग वर्जित है। यह बहादुरों का अस्त्र है जिसमें किसी भी रूप में हिंसा का समावेश संभव नहीं है। सत्याग्रह का अधार गीता का निष्काम कर्मयोग है। इस का आधार साध्य व साधन की एकता है। सत्याग्रह का सिद्धान्त हमें यह सन्देश देता है कि दुनिया का आधार शस्त्रबल न होकर आत्मबल है, सत्य है, न्याय है, सेवा है, दया है। सत्याग्रह अहिंसा का मार्ग है। यह एक असीमित एवं अपरिमित अवधारणा है। सत्याग्रह में सत्य पर अधिक ध्यान दिया जाता है और उसका किसी भी मूल्य पर त्याग नहीं किया जाता। अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। सत्याग्रही पर बल–प्रयोग का कोई प्रभाव नहीं होता। सत्याग्रही स्वभाव से कानून का पालन करने वाला होता है। वह अन्तःकरण की आवाज को सर्वोच्च कानून मानकर उसका पालन करता है। सविनय–अवज्ञा द्वारा कतिपय कानूनों का विरोध केवल देखने मात्र में ही अवज्ञा दृष्टिगोचर होती है। यथार्थ में वह उच्चतर कानून अथवा नैतिकता का पालन करता है। गाँधी जी ने सत्याग्रह को सत्य के प्रति आग्रह' तथा इस प्रकार के आग्रह से उत्पन्न शक्ति माना है। बुराई पर प्रेम द्वारा विजय प्राप्त की जानी चाहिए। ऐसा व्यवहार परिवार, समाज तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सम्भव है। सत्याग्रह की सीमाओं के विषय में तीन सिद्धान्तो का उल्लेख किया गया है–

1. सत्याग्रह करने वालों को अपनी मूल माँग को नहीं बढ़ाया चाहिए,
2. सत्याग्रह से प्राप्त सफलता सत्याग्रह द्वारा ही बनी रह सकती है तथा
3. सत्याग्रह से जो कुछ प्राप्ति सम्भव है वह निश्चित रूप से प्राप्ति होगी।

टॉलस्टॉय से प्रेरणा प्राप्त कर गाँधी जी ने सत्याग्रह को पारिवारिक जीवन की सीमाओं से बाहर निकाल कर सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रयोग किया। सत्याग्रह में न कोई नेता होता है और न ही कोई अनुयायी। सभी नेता हैं और सभी सत्याग्रह मार्ग के समान अनुगामी हैं। आत्मनिर्भरता सत्याग्रह की प्रमुख विशेषता है। सत्याग्रह प्रगतिशील प्रक्रिया है। इसमें न्यूनतम भी अधिकतम है। इसमें न्यूनतम नष्ट नहीं होता और पलायन का कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रह का संघर्ष दीर्घाकालीन होता है और वह लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात ही समाप्त होता है। सत्याग्रह का प्रयोग दूसरों के हितों व सार्वजनिक हितों के लिए किया जाना चाहिये। गाँधी जी सत्याग्रह को प्रत्यक्ष कार्यवाही का सर्वाधिक प्रभावशाली शस्त्र मानते थे। लेकिन उन्होंने यह सलाह दी कि सत्याग्रह करने से पहले अन्य उपायों का अवलम्बन किया जाना चाहीए। जब अन्य उपाय निष्फल हो जायें तभी सत्याग्रह का अवलम्बन

किया जाना चाहिए।

सत्याग्रह के साधन–

1. सविनय अवज्ञा
2. असहयोग
3. हड़ताल
4. सामाजिक बहिष्कार
5. धरना
6. उपवास

शासन का विकेन्द्रीकरण

गांधीजी शासन के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनका मानना था कि शासन के विकेन्द्रीकरण से अधिक से अधिक लोग शासन कार्य में भागीदार बन सकेंगे। व्यक्ति शासन की प्राथमिक इकाई होगा। शासन के केन्द्रीकरण से व्यक्ति की स्वतंत्रता को खतरा है। गांधीजी के अनुसार शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होने से देश के 7 लाख गांवों को स्वतंत्रता पूर्ण कार्य करने का तथा शासन में भागीदारी करने का मौका मिलेगा। शासन एक पिरामिड की भांति न होकर एक महासमुद्रीयवृत्त के अनुसार होगा। इसलिए गांधीजी ने पंचायती राज का समर्थन किया। प्रत्येक गांव में पंचायतें होंगी जो अपने गांव के संबंध में निर्णय लेंगी तथा विकास योजनाओं का निर्माण कर स्वयं ही उनका कार्यान्वयन भी करेंगी।

राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ प्रमुख व्यक्तित्व

दादा भाई नौरोजी | बाल गंगाधर तिलक | एनी बेसेन्ट | आसफ अली | बी.बी. मित्र | बिपन चन्द्र पाल

श्री ओरोबिन्दो | अरूणा आसफ अली | मोतीलाल नेहरू | लाला लाजपत राय | चितरजंन दास | गोपाल कृष्ण गोखले

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ईस्ट इंडिया एसोसियेशन की स्थापना किसने की ?

   (अ) नौरोजी (ब) तिलक (स) राजगोपालाचारी (द) गोखले

2. 1885 ई0 में स्थापना के पश्चात कांग्रेस का पहला विभाजन कब हुआ ?

   (अ) 1905 (ब) 1906 (स) 1907 (द) 1908

3. किस अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज अपना लक्ष्य निर्धारित किया ?

   (अ) 1929, लाहौर (ब) 1916, लखनऊ (स) 1931, कराची (द) 1936, फैजपुर

4. असहयोग आंदोलन किसके प्रश्न को लेकर प्रारम्भ हुआ ?

   (अ) खिलाफत (ब) आर्थिक मामले (स) रोलट एक्ट (द) साइमन कमीशन

1. 1919 के अधिनियम के तहत स्थापित द्वैध प्रशासन से आप क्या समझते हैं ?
2. मुक्ति दिवस से आप क्या समझते है ?
3. क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रस्ताव क्या थे ?
4. स्वदेशी आंदोलन के संबंध में बताइये।
5. राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।